

अपनी उनकी सबकी बात

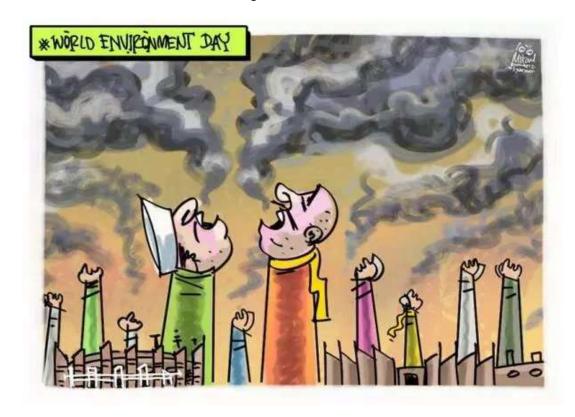
मई 2018

नई दिल्ली

आरएसएस के अंबेडकर यानी मक्कार इरादों का पुलिंदा ...जिसने 60 साल पहले तानाशाही का खतरा भांप लिया था! स्टीफेन हॉकिंग: जिंदगी, मौत, अवसाद और मोहब्बत शरद जोशी के प्रासंगिक व्यंग्य

कठुआ कांड: एक टिप्पणी मारुति मजदूरों को आजीवन कैद लैंड बैंक के खिलाफ आदिवासी रघुवीर सहाय की कुछ कविताएं

कार्ल मार्क्स की 200वीं जयन्ती और राहुल सांकृत्यायन की 125वीं जयन्ती पर विशेष सामग्री



अपनी बात

नामाबर का दोबारा प्रकाशन शुरू होने के बाद राष्ट्रीय घटनाक्रम तेज़ी से बदला है। ज़ाहिर है इसकी एक वजह लगातार हुए विधानसभा चुनाव और कुछ उपचुनाव रहे जिनके आधार पर क़यास लगाए जाने लगे कि लोकसभा चुनाव 2019 में न होकर समय से पहले करवा दिया जाएगा। चूंकि कर्नाटक विधानसभा से लेकर कैराना/नूरपुर आदि उपचुनावों तक भारतीय जनता पार्टी की चुनावी लहर थोड़ा सुस्त पड़ती दिखती है, केवल इसी आधार पर यह मान बैठना कि देश के हालात सही हो रहे हैं ठीक नहीं होगा। चुनावों का सामाजिक हालात के साथ अब रिश्ता कमज़ोर पड़ चुका है। जो चुनावी नतीजे में दिखता है वह समाज का सच्चा अक्स नहीं है। हमने देखा है कि कैसे पहले भी सत्ताधारी दल चुनाव हारता है लेकिन समाज पर उसकी विचारधारा की जकड़ और मज़बूत होती जाती है। असल संकट यहां है।

लगातार स्त्रियों, दिलतों, आदिवासियों, किसानों और मजदूरों के जीने की स्थितियां दुष्कर होती जा रही हैं। लोगों के बीच नफ़रत फैल रही है। ऐसा नहीं कि शहरी अथवा कस्बाई मध्यवर्ग बहुत चैन से है। महंगाई बढ़ी है। पेट्रोल-डीज़ल के दाम अभूतपूर्व स्तरों पर हैं। अभी शहरों तक आंच वैसी नहीं पहुंची है कि लोग बेचैन हो उठें लेकिन गाव-कस्बों में सतह के नीचे की बेचैनी खुलकर सामने आ गई है। जो इलाके अब तक बिलकुल शांत पड़े हुए थे वहां भी नफरत ने अपनी पैठ बना ली है। ताज़ा उदाहरण मेघालय है जहां बीजेपी की सरकार बनने के तीन महीने के भीतर ही जनजातीय समुदायों और मज़हबी सिक्खों के बीच दंगे भड़क गए, जबिक 1987 के बाद से ऐसा यहां नहीं देखा गया था।

दूसरी ओर धरती एक अलग ही संकट से गुज़र रही है। हर बार 5 जून को हम पर्यावरण दिवस को मनाकर औपचारिकता निभा लेते हैं, लेकिन कभी आपने सोचा है कि ये धरती ही नहीं रहेगी तो काहे की राजनीति और कैसा ज्ञान? ऐसे चौतरफा संकट में हम किसका मुंह देखें?

देश-दुनिया में ऐसे तमाम लोग हुए हैं जिन्हें पढ़ना और समझना उम्मीद को बचाए रखता है। यह साल कार्ल मार्क्स की 200वीं जयन्ती का है। यहां भारत में आधुनिक काल के सबसे बड़े यायावर विद्वान माने जाने वाले राहुल सांकृत्यायन के जन्म की 125वीं जयन्ती अभी ही बीती है। संयोग नहीं कि राहुल और मार्क्स एक ही मंजिल के हमाराही थे अलबत्ता दोनों के तरीके अलग थे। अपने-अपने क्षेत्रों में अपने-अपने हक़ की लड़ाइयां लड़ते हुए हमें ऐसे विलक्षण लोगों के लिखे को भी पढ़ते रहना चाहिए ताकि बदलती हुई दुनिया की सही समझदारी विकसित कर सकें। इस अंक में मार्क्स और राहुल दोनों पर विशेष सामग्री है।

हमारे दौर के बड़े वैज्ञानिक स्टीफेन हॉकिंग पिछले दिनों गुज़र गए। उन्होंने इस अबूझ ब्रह्माण्ड की कई परतों को उघाड़ने का काम किया था। हॉकिंग 21 वर्ष की अवस्था के बाद तकरीबन निष्क्रिय हो चुके थे लेकिन खगोलीय रहस्यों को अपनी मेधा से भेदते रहे। उनसे ज्यादा कठिन लेकिन प्रेरक जीवन आसपास नहीं दिखता। उनका एक दिल छू लेने वाला साक्षात्कार इसी अंक में है। बाकी, हर बार की तरह समयानुकूल सामाजिक-राजनीतिक और साहित्यिक सामग्री तो है ही। रघुवीर सहाय की आपातकाल के दौरान लिखी कविताओं में पाठकों को अपने दौर का अक्स दिखेगा। संघर्षों में एकजुटता बनाए रखें।

शुभकामनाओं के साथ

आपकी बात

रघुवीर सहाय की कुछ कविताएँ

हिंदू पुलिस

ब्ढ़े सुकुल का जब अंत समय आया गिरते गिरते उसके शव ने मुँह बाया सठिआया अपाहिज कुछ समझ नहीं पाया

सुना था जहाँ पर है कन्याकुमारी दूर उसी दक्षिण से जब पहली बारी गया आया हिन्दू तो गोली क्यों मारी

आँखें फाड़े सुकुल यह रहस्य देखता उत्तर दक्षिण के ३६ भये देवता केन्द्रीय रिज़र्व प्लिस भारत की एकता

राष्ट्रीय प्रतिज्ञा

हमने बहुत किया है हम ही कर सकते हैं हमने बहुत किया है पर अभी और करना है हमने बहुत किया है पर उतना नहीं हुआ है हमने बहुत किया है जितना होगा कम होगा हमने बहुत किया है जनता ने नहीं किया है हमने बहुत किया है हम फिर से बहुत करेंगे हमने बहुत किया है पर अब हम नहीं कहेंगे कि हम अब क्या और करेंगे और हमसे लोग अगर कहेंगे कुछ करने को तो वह तो कभी नहीं करेंगे

अंधी पिस्तौल

सुरक्षा अधिकारी सेनाधिपति के
पूर कर देखते हैं मेरा चेहरा
बहुत दिनों से उन्होंने नहीं देखा है मेरा चेहरा
धीरे-धीरे कम होती गई है मेरी और सेनाधिपति की
बातचीत
इसलिए मैं सिपाहियों की निगाह में अजनबी हो गया हूँ

ये सिपाही भी कोई दूसरे हैं पहले जो थे कुछ अदब करते थे मेरा भी और उनका भी अब जो हैं इतने उजड्ड हैं कि मैं सेनाधिपति के लिए चिन्तित हूँ

वे वरदी नहीं पहने हैं सिर्फ़ कमीज़ पतलून उसके नीचे वे सौ फ़ीसदी हिन्द्स्तानी हैं

उन्हें वरदी पहनाई गई होती तो अच्छा रहता अब जब वे पिस्तौल निकालेंगे कितना अचरज होगा और किस पर दागेंगे यह देखकर तो और भी ज़्यादा

आने वाला ख़तरा

इस लज्जित और पराजित युग में कहीं से ले आओ वह दिमाग जो ख़ुशामद आदतन नहीं करता

कहीं से ले आओ निर्धनता जो अपने बदले में कुछ नहीं माँगती और उसे एक बार आँख से आँख मिलाने दो

जल्दी कर डालो कि फलने फूलने वाले हैं लोग औरतें पिएँगी आदमी खाएँगे-- रमेश एक दिन इसी तरह आएगा-- रमेश कि किसी की कोई राय न रह जाएगी-- रमेश क्रोध होगा पर विरोध न होगा अर्जियों के सिवाय-- रमेश ख़तरा होगा ख़तरे की घंटी होगी और उसे बादशाह बजाएगा-- रमेश

हा हा हा

हा हा हा तुमने मार डाले लोग हा हा हा

क्योंकि वे हँसे थे तुमने मार डाले लोग तुमने मार डाले लोग हा हा हा

क्योंकि वे सुस्त पड़े थे तुमने मार डाले लोग तुमने मार डाले लोग हा हा हा

क्योंकि उनमें जीने की आस नहीं रही थी तुमने मार डाले लोग तुमने मार डाले लोग हा हा हा तुमने मार डाले लोग

क्योंकि वे बहुत सारे लोग थे इसी तरह के बहुत सारे लोग

प्रश्न

आमने-सामने बैठे थे रामदास मनुष्य और मानवेन्द्र मंत्री रामदास बोले आप लोगों को मार क्यों रहे हैं ? मानवेन्द्र भौंचक सुनते रहे थोड़ी देर बाद रामदास को लगा कि मंत्री कुछ समझ नहीं पा रहे हैं और उसने निडर होकर कहा आप जनता की जान नहीं ले सकते सहसा बहुत से सिपाही वहाँ आ गए।

नई हंसी

महासंघ का मोटा अध्यक्ष धरा ह्आ गद्दी पर खुजलाता है उपस्थ सर नहीं, हर सवाल का उत्तर देने से पेश्तर बीस बड़े अखबारों के प्रतिनिधि पूछें पचीस बार क्या ह्आ समाजवाद कहें महासंघपति पचीस बार हम करेंगे विचार आंख मारकर पचीस बार वह, हंसे वह, पचीस बार हंसें बीच अखबार एक नयी ही तरह की हंसी यह है पहले भारत में सामूहिक हास परिहास तो नहीं ही था। जो आंख से आंख मिला हंस लेते थे इसमें सब लोग दायें-बायें झांकते हैं और यह मुंह फाड़कर हंसी जाती है। राष्ट्र को महासंघ का यह संदेश है जब मिलो तिवारी से - हंसो - क्योंकि त्म भी तिवारी हो जब मिलो शर्मा से - हंसो - क्योंकि वह भी तिवारी है जब मिलो मुसद्दी से खिसियाओ जांतपांत से परे रिश्ता अटूट है राष्ट्रीय झेंप का।

शरद जोशी के दो व्यंग्य

नेतृत्व की ताकत

नेता शब्द दो अक्षरों से बना है- 'ने' और 'ता'। इनमें एक भी अक्षर कम हो तो कोई नेता नहीं बन सकता । मगर हमारे शहर के एक नेता के साथ एक अजीब ट्रेजेडी हुई। वे बड़ी भागदौड़ में रहते थे। दिन गेस्ट हाउस में गुजारते रातें डाक बंगलों में। लंच अफसरों के सात लेते डिनर सेठों के साथ। इस बीच तो वक्त मिलता उसमें भाषण देते। कार्यकर्ताओं को संबोधित करते। कभी कभी खुद संबोधित हो जाते। मतलब यह कि बड़े व्यस्त। 'ने' और 'ता' दो अक्षरों से मिलकर तो बने थे एक दिन यह हुआ कि उनका 'ता' खो गया सिर्फ 'ने' रह गया।

इतने बड़े नेता और 'ता' गायब। शुरू में तो उन्हें पता ही नहीं चला बाद में सेक्रेट्री ने बताया कि आपका 'ता' नहीं मिल रहा है। आप सिर्फ 'ने' से काम चला रहे हैं।

नेता बड़े परेशान। नेता का मतलब होता है नेतृत्व करने की ताकत। ताकत चली गई सिर्फ नेतृत्व रह गया। 'ता' के साथ ताकत गई। तालियाँ खत्म हो गईं जो 'ता' के कारण बजती थीं। ताजगी नहीं रही। नेता बहुत चीखे। मेरे खिलाफ यह हरकत विरोधी दलों ने की है। इसमें विदेशी शक्तियों का हाथ है। यह मेरी छवि धूमिल करने का प्रयत्न है। पर जिसका 'ता' चला जाए उस नेता की सुनता कौन है। सी आई डी लगाई गई। सी बी आई ने जाँच की। रौ की मदद ली गई। 'ता' नहीं मिला।

नेता ने एक सेठ जी से कहा- यार हमारा 'ता' गायब है। अपने ताले में से 'ता' हमें दे दो।

सेठ कुछ देर सोचता रहा फिर बोला- यह सच है कि ले की मुझे जरूरत रहती है क्यों कि दे का तो काम नहीं पड़ता मगर ताले का 'ता' चला जाए तो लेकर रखेंगे कहाँ। सब इनकमटैक्स वाले ले जाएँगे। तू नेता रहे कि न रहे मैं ताले का 'ता' तो तुझे नहीं दूँगा। 'ता' मेरे लिये बहुत जरूरी है। कभी तालाबंदी करनी पड़े तो ऐसे वक्त तू तो मजदूरों का साथ देगा मुझे 'ता' थोड़े देगा।

सेठ जी को नेता ने बहुत समझाया। जब तक नेता रहूँगा मेरा 'ता' आपके ताले का समर्थन और रक्षा करेगा। आप 'ता' मुझे दे दें। और फिर ले आपका। लेते रहिये मैं कुछ नहीं कहूँगा। सेठ जी नहीं माने। नेता क्रोध से उठकर चले आए।

विरोधी मजाक बनाने लगे। अखबारों में खबर उछली कि कई दिनों से नेता का 'ता' नहीं रहा। अगर ने भी चला गया तो यह कहीं का नहीं रहेगा। खुद नेता के दल के लोगों ने दिल्ली जाकर शिकायत की। आपने एक ऐसा नेता हमारे सिर पर थोप रखा है जिसके पास 'ता' नहीं है।

नेता दुखी था पर उसमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह जनता में जाए और कबूल करे कि उसमें 'ता' नहीं है। यदि वह ऐसा करता तो जनता शायद अपना 'ता' उसे दे देती। पर उसे डर था कि जनता के सामने उसकी पोल खुल गई तो क्या होगा।

एक दिन उसने अजीब काम किया। कमरा बंद कर जूते में से 'ता' निकाला और 'ने' से चिपकाकर फिर नेता बन गया। यद्यपि उसके व्यक्तित्व से दुर्गंध आ रही थी मगर वह खुश था कि चलो नेता तो हूँ। केन्द्र ने भी उसका समर्थन किया। पार्टी ने भी कहा- जो भी नेता है ठीक है। हम फिलहाल परिवर्तन के पक्ष में नहीं हैं।

समस्या सिर्फ यह रह गई कि लोगों को इस बात का पता चल गया। आज स्थिति यह है कि लोग नेता को देखते हैं और अपना जूता हाथ में उठा लेते हैं। उन्हें डर है कि कहीं वो इनके जूतों में से 'ता' न चुरा ले।

पत्रकार अक्सर प्रश्न पूछते हैं- सुना आपका 'ता' गायब हो गया था पिछले दिनों। वे धीरे से कहते हैं। गायब नहीं हो गया था वो बात यह थी कि माता जी को चाहिये था तो मैंने उन्हें दे दिया था। आप तो जानते हैं मैं उन्हें कितना मानता हूँ। आज मैं जो भी कुछ हूँ उनके ही कारण हूँ। वे 'ता' क्या मेरा 'ने' भी ले लें तो मैं इन्कार नहीं करूँगा।

ऐसे समय में नेता की नम्नता देखते ही बनती थी। लेकिन मेरा विश्वास है मित्रों जब भी संकट आएगा नेता का 'ता' नहीं रहेगा। लोग निश्चित ही जूता हाथ में ले बढ़ेंगे और प्रजातंत्र की प्रगति में अपना योग देंगे।

एक भूतपूर्व मंत्री से मुलाकात

मंत्री थे तब उनके दरवाज़े कार बँधी रहती थी। आजकल क्वार्टर में रहते हैं और दरवाज़े भैंस बँधी रहती है। मैं जब उनके यहाँ पहुँचा वे अपने लड़के को दूध दुहना सिखा रहे थे और अफ़सोस कर रहे थे कि कैसी नई पीढ़ी आ गई है जिसे भैंसें दुहना भी नहीं आता।

मुझे देखा तो बोले - 'जले पर नमक छिड़कने आए हो!'

'नमक इतना सस्ता नहीं है कि नष्ट किया जाए। कांग्रेस राज में नमक भी सस्ता नहीं रहा।'

'कांग्रेस को क्यों दोष देते हो! हमने तो नमक-आंदोलन चलाया।' – फिर बड़बड़ाने लगे, 'जो आता है कांग्रेस को दोष देता है। आप भी क्या विरोधी दल के हैं?'

'आजकल तो कांग्रेस ही विरोधी दल है।'

वे चुप रहे। फिर बोले, 'कांग्रेस विरोधी दल हो ही नहीं सकती। वह तो राज करेगी। अंग्रेज़ हमें राज सौंप गए हैं। बीस साल से चला रहे हैं और सारे गुर जानते हैं। विरोधियों को क्या आता है, फ़ाइलें भी तो नहीं जमा सकते ठीक से। हम थे तो अफ़सरों को डाँट लगाते थे, जैसा चाहते थे करवा लेते थे। हिम्मत से काम लेते थे। रिश्तेदारों को नौकरियाँ दिलवाईं और अपनेवालों को ठेके दिलवाए। अफ़सरों की एक नहीं

चलने दी। करके दिखाए विरोधी दल! एक ज़माना था अफ़सर खुद रिश्वत लेते थे और खा जाते थे। हमने सवाल खड़ा किया कि हमारा क्या होगा, पार्टी का क्या होगा?'

'हमने अफ़सरों को रिश्वत लेने से रोका और खुद ली। कांग्रेस को चंदा दिलवाया, हमारी बराबरी ये क्या करेंगे?'

'पर आपकी नीतियाँ ग़लत थीं और इसलिए जनता आपके ख़िलाफ़ हो गई!'

'कांग्रेस से यह शिकायत कर ही नहीं सकते आप। हमने जो भी नीतियाँ बनाई उनके ख़िलाफ़ काम किया है। फिर किस बात की शिकायत? जो उस नीति को पसंद करते थे, वे हमारे समर्थक थे, और जो उस नीति के ख़िलाफ़ थे वे भी हमारे समर्थक थे, क्यों कि हम उस नीति पर चलते ही नहीं थे।'

मैं निरुत्तर हो गया।

'आपको उम्मीद है कि कांग्रेस फिर इस राज्य में विजयी होगी?'

'क्यों नहीं? उम्मीद पर तो हर पार्टी कायम है। जब विरोधी दल असफल होंगे और बेकार साबित होंगे, जब दो ग़लत और असफल दलों में से ही चुनाव करना होगा, तो कांग्रेस क्या बुरी? बस तब हम फिर 'पावर' में आ जाएँगे। ये विरोधी दल उसी रास्ते पर जा रहे हैं जिस पर हम चले थे और इनका निश्चित पतन होगा।'

'जैसे आपका हुआ।'

'बिल्कुल।'

'जब से मंत्री पद छोड़ा आपके क्या हाल हैं?'

'उसी तरह मस्त हैं, जैसे पहले थे। हम पर कोई फ़र्क नहीं पड़ा। हमने पहले से ही सिलसिला जमा लिया था। मकान, ज़मीन, बंगला सब कर लिया। किराया आता है। लड़के को भैस दुहना आ जाए, तो डेरी खोलेंगे और दूध बेचेंगे, राजनीति में भी रहेंगे और बिज़नेस भी करेंगे। हम तो नेहरू-गांधी के चेले हैं।'

'नेहरू जी की तरह ठाठ से भी रह सकते हैं और गांधी जी की तरह झोंपड़ी में भी रह सकते हैं। ख़ैर, झोंपड़ी का तो सवाल ही नहीं उठता। देश के भविष्य की सोचते थे, तो क्या अपने भविष्य की नहीं सोचते! छोटे भाई को ट्रक दिलवा दिया था। ट्रक का नाम रखा है देश-सेवक। परिवहन की समस्या हल करेगा।'

'कृषि-मंत्री था, तब जो खुद का फ़ार्म बनाया था, अब अच्छी फसल देता है। जब तक मंत्री रहा, एक मिनट खाली नहीं बैठा, परिश्रम किया, इसी कारण आज सुखी और संतुष्ट हूँ। हम तो कर्म में विश्वास करते हैं। धंधा कभी नहीं छोड़ा, मंत्री थे तब भी किया।'

'आप अगला चुनाव लड़ेंगे?'

'क्यों नहीं लड़ेंगे। हमेशा लड़ते हैं, अब भी लड़ेंगे। कांग्रेस टिकट नहीं देगी तो स्वतंत्र लड़ेंगे।'

'पर यह तो कांग्रेस के ख़िलाफ़ होगा।'

'हम कांग्रेस के हैं और कांग्रेस हमारी है। कांग्रेस ने हमें मंत्री बनने को कहा तो बने। सेवा की है। हमें टिकट देना पड़ेगा। नहीं देंगे तो इसका मतलब है कांग्रेस हमें अपना नहीं मानती। न माने। पहले प्रेम, अहिंसा से काम लेंगे, नहीं चला तो असहयोग आंदोलन चलाएँगे। दूसरी पार्टी से खड़े हो जाएँगे।'

'जब आप मंत्री थे, जाति-रिश्तेवालों को बड़ा फ़ायदा पहुँचाया आपने।'

'उसका भी भैया इतिहास है। जब हम कांग्रेस में आए और हमारे बारे में उड़ गई कि हम हरिजनों के साथ उठते-बैठते और थाली में खाना खाते हैं, जातिवालों ने हमें अलग कर दिया और हमसे संबंध नहीं रखे। हम भी जातिवाद के ख़िलाफ़ रहे और जब मंत्री बने, तो शुरू-शुरू में हमने जातिवाद को कसकर गालियाँ दीं।'

'दरअसल हमने अपने पहलेवाले मंत्रिमंडल को जातिवाद के नाम से उखाड़ा था। सो शुरू में तो हम जातिवाद के ख़िलाफ़ रहे। पर बाद में जब जातिवालों को अपनी ग़लती पता लगी तो वे हमारे बंगले के चक्कर काटने लगे। जाति की सभा हुई और हमको मानपत्र दिया गया और हमको जाति – कुलभूषण की उपाधि दी। हमने सोचा कि चलो सुबह का भूला शाम को घर आया। जब जाति के लोग हमसे प्रेम करते हैं, तो कुछ हमारा भी फर्ज़ हो जाता है। हम भी जाति के लड़कों को नौकरियाँ दिलवाने, तबादले रुकवाने, लोन दिलवाने में मदद करते और इस तरह जाति की उन्नित और विकास में योग देते। आज हमारी जाति के लोग बड़े–बड़े पदों पर बैठे हैं और हमारे आभारी हैं कि हमने उन्हें देश की सेवा का अवसर दिया। मैंने लड़कों से कह दिया कि एम.ए. करके आओ चाहे थर्ड डिवीजन में सही, सबको लैक्चरर बना दूँगा। अपनी जाति बुद्धिमान व्यक्तियों की जाति होनी चाहिए। और भैया अपने चुनाव–क्षेत्र में जाति के घर सबसे ज़्यादा हैं। सब सॉलिड वोट हैं। सो उसका ध्यान रखना पड़ता है। यों दुनिया जानती है, हम जातिवाद के ख़िलाफ़ हैं। जब तक हम रहे हमेशा मंत्रिमंडल में राजपूत और हिरेजनों की संख्या नहीं बढ़ने दी। हम जातिवाद से संघर्ष करते रहे और इसी कारण अपनी जाति की हमेशा मंजॉरिटी रही।'

लड़का भैंस दुह चुका था और अंदर जा रहा था। भूतपूर्व मंत्री महोदय ने उसके हाथ से दूध की बाल्टी ले ली।

'अभी दो किलो दूध और होगा जनाब। पूरी दुही नहीं है तुमने। लाओ हम दुहें।' – फिर मेरी ओर देखकर बोले, एक तरफ़ तो देश के बच्चों को दूध नहीं मिल रहा, दूसरी ओर भैंसें पूरी दुही नहीं जा रहीं। और जब तक आप अपने स्रोतों का पूरी तरह दोहन नहीं करते, देश का विकास असंभव हैं।'

वे अपने स्रोत का दोहन करने लगे। लड़का अंदर जाकर रिकार्ड बजाने लगा और 'चा चा चा' का संगीत इस आदर्शवादी वातावरण में गूँजने लगा। मैंने नमस्कार किया और चला आया।

उनकी बात

आरएसएस के 'अंबेडकर' यानी मक्कार इरादों का पुलिंदा

कँवल भारती

የ

'सत्याग्रह के बावत हम गीता का आधार लेते हैं. कारण सत्याग्रह गीता का मुख्य प्रतिपादित विषय है. कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि बैठो मत. जिन कौरवों ने तुम्हारा राज्य हड़पा है, उनसे युद्ध करने को तैयार हो जाओ. तब अर्जुन ने प्रश्न किया, यह कैसा सत्याग्रह है? इस प्रश्न का जो उत्तर कृष्ण ने दिया, वही गीता है. गीता सत्याग्रह पर एक मीमांसा है. अछूत लोग सवर्णों से समान अधिकार पाने का जो आग्रह करते हैं, वह सत्याग्रह है.'(1)

ये पंक्तियाँ डा. आंबेडकर ने अपने पत्र 'बहिष्कृत भारत' के 25 नवम्बर 1927 के अंक में सम्पादकीय लेख में लिखी थीं. इन्हीं पंक्तियों के आधार पर आरएसएस यह प्रचार कर रहा है कि डा. आंबेडकर ने अपने सामाजिक संघर्ष की प्रेरणा भगवद्गीता से ली थी. एक और पक्ष देखिए :

'यह दुखद है कि भारत के मुसलमानों में समाज-सुधार का ऐसा कोई संगठित आन्दोलन नहीं उभरा, जो इन बुराइयों का सफलतापूर्वक उन्मूलन कर सके. असल में मुसलमान यह महसूस ही नहीं करते कि वे बुराइयाँ हैं. परिणामत: वे उनको खत्म करने के लिए सिक्रय भी नहीं रहते. इसके विपरीत वे अपनी प्रथाओं में किसी भी परिवर्तन का विरोध करते हैं.'(2)

ये पंक्तियाँ डा. आंबेडकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Pakistan Or The Partition Of India' में लिखी हैं. इन्हीं पंक्तियों के आधार पर आरएसएस प्रचार कर रहा है कि डा. आंबेडकर मुस्लिम-विरोधी थे.

मंडल आन्दोलन के दौर में आरएसएस की ओर से लाखों की संख्या में एक पुस्तिका वितरित की गई थी, जिसका नाम 'राष्ट्रपुरुष डा. भीमराव आंबेडकर' है. उसने ऐसे कलेंडर भी प्रकाशित किए थे, जिनमें उनके ऊपर श्रीराम को दर्शाया कर यह सन्देश दिया गया कि वे श्रीराम के भक्त थे. इस सबका मकसद डा. आंबेडकर को हिंद्त्व से जोड़कर दलित समाज को हिंद्वादी बनाना है.

उसी दौर में आरएसएस की एक लेखमाला 'डा. अम्बेडकर और इस्लाम' नाम से 'ब्लिट्ज' में छपी थी, जिसके आधार पर 4 और 5 जून 1993 को हिंदी दैनिक 'राष्ट्रीय सहारा' में रामकृष्ण बजाज ने दो किश्तों में लेख लिखा था. उसमें उन्होंने अपने भ्रम का निवारण करते हुए लिखा था, 'मेरा मानना था कि डा. आंबेडकर एक कटु हिन्दू विरोधी थे. इसी दलील के आधार पर हिन्दू विरोधी होने के कारण वह मुस्लिम-समर्थक थे. लेकिन अब मुझे विश्वास हो गया है कि मेरी समझ गलत थी.' इसके बाद उन्होंने लिखा, 'हिन्दूधर्म की जगह उन्हें कौन-सा धर्म अपनाना चाहिए, इसके लिए डा. आंबेडकर ने इस्लाम सहित

संसार के सभी मुख्य धर्मों का गहरा अध्ययन किया था. अंत में उन्होंने और उनके अनुयायियों ने बौद्धधर्म अपनाया, जिसकी जड़ मूलत: वही थी, जहाँ से हिन्दूवाद का जन्म हुआ था.'

हाल में जागृति विहार, मेरठ से प्रकाशित आरएसएस के पिक्षिक पत्र 'राष्ट्रदेव' के 1 सितम्बर 2017 के अंक में 'बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया गया है, जिसमें डा. आंबेडकर को हिन्दूवादी ही नहीं, बल्कि ब्राह्मणवादी भी बना दिया गया है. आरएसएस ने इस लेख में अपने एजेंडे–गाय, श्रीराम और ब्राह्मण-भिक्ति को डा. आंबेडकर के दिमाग में घुसेड़ दिया है. कुछ प्रसंगों का अनर्थ करके वह डा. आंबेडकर को उसी तरह ठिकाने लगा रहा है, जिस तरह उसने बुद्ध, कबीर और रैदास को लगाया गया है. आरएसएस के इस लेख पर एक नजर डालते हैं–

'बाबासाहेब का परिवार अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति का था. इसमें तीन सन्यासी हो गए. दादा जी श्री मालोजीराव ने रामानन्द सम्प्रदाय से दीक्षा ली थी. पिता श्री रामजी ने कबीरपंथ की दीक्षा ली. कबीर के ही गुरु रामानंद थे. रामजी के बड़े भाई, यानी बाबासाहेब के ताऊ जी, भी सन्यास लेकर घर छोड़कर गए थे. बाबासाहेब ने भी पत्नी रमाबाई (आई साहेब) के देहांत के बाद, (1935) में कुछ दिन सन्यासियों वाली भगवा कफनी पहिन ली थी. बचपन में पिताजी के आग्रह के कारण भीमराव व भाई-बहिनों को भोजन से पहले हिन्दू संतों की रचनाएँ–दोहे, कविता, अभंग आदि कोई-न-कोई याद कर सुनानी पड़ती थी. बाबासाहेब कहते हैं, इसी कारण संत त्काराम, मुक्तेश्वर, एक नाथ, कबीर आदि की रचनाएं मुझे कंठस्थ हुईं.' (3)

आरएसएस अतीत के आधार पर वर्तमान को व्यक्त करने का काम करता है. यही उसका झूठ है, जो वह बड़ी कुशलता से खड़ा करता है. क्या संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति होगा, जिसमें बचपन से मृत्यु-पर्यन्त कोई परिवर्तन न आया होगा? क्या गाँधी वही व्यक्ति थे, जो वह बचपन में थे? बचपन में सभी में परिवार के संस्कार होते हैं. संस्कारों से विद्रोह या उनमें परिवर्तन परिस्थितियों और वातावरण के अन्सार होता है. इस्लाम के पैगम्बर हजरत मोहम्मद के बाप-दादे मूर्तिपूजक थे, तो क्या इस आधार पर मोहम्मद साहेब को मूर्तिपूजक कहा जा सकता है? आरएसएस के कितने ही समर्थक उसकी हिंदूवादी विचारधारा से विद्रोह करके बाहर आए. देशराज गोयल के बाद एक उदाहरण हिंदी के आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी का है. उन्होंने स्वीकार किया है कि वह आरएसएस में थे. गाँधी की हत्या के बाद जेल भी गए थे. पर राह्ल सांकृत्यायन की 'मानव समाज' पुस्तक पढ़कर वह मार्क्सवादी बने. वह कहते हैं, 'मैंने महसूस किया कि देश में और भी लोग हैं, जो देश से उतना ही प्रेम करते हैं, जितना हम करते हैं. और भी लोग हैं, जो अपने धर्म को इतना प्रेम करते हैं, जितना हम करते हैं. मैं गरीब घर का था. संघ हिन्दू संगठन है और वहाँ भी पैसे वालों का दबदबा था. जातपात, छुआछूत जैसी विसंगतियां देखने को मिलीं. इसी वर्गभेद की वजह से मैं वामपंथ की तरफ चला गया.' (4) उन्होंने बड़े पते की बात कही है कि 'मैं गरीब घर का था.' बात भी सही है, गरीब परिवारों के लोग ही ज्यादा धर्म-धर्म करते हैं. आरएसएस की सैकड़ों संस्थाओं के लाखों कार्यकर्ता गरीब घरों से हैं, जो हिंद्त्व के लिए हर समय मरने-मारने को तैयार रहते हैं. वह उन्हें हिंद्त्व की अफीम खिला कर म्सलमानों और ईसाईयों के विरुद्ध हिंसा में इस्तेमाल करता है.

यहाँ तक बाबासाहेब डा. आंबेडकर के दादा जी श्री मालोजीराव का ब्राहमण रामानंद सम्प्रदाय में दीक्षा लेने का प्रश्न है, और यह बताने का प्रश्न है कि रामानन्द कबीर के गुरु थे, तो दलित लेखकों के द्वारा इस धारणा का अकाट्य तर्कों और प्रमाणों से खंडन किया जा चुका है कि कबीर ब्राहमण रामानन्द के शिष्य थे. कबीर ही नहीं, रैदास भी ब्राहमण रामानन्द के शिष्य नहीं थे. कबीर और ब्राहमण रामानन्द की विचारधारा में जमीन-आसमान का अंतर है. कबीर और रैदास दोनों ही वेदों के निंदक थे, जबिक ब्राहमण रामानन्द का धर्म ही वेदधर्म था. कबीर ने तो घोषणा ही कर दी थी— 'ब्राहमण गुरु जगत का, साध का गुरु नाहिं/ उरिझ-पुरिझ कर मिर रहया चारो वेदा माहिं.' (5) वेदों में उरझ-पुरझ कर मरने वाले एक कर्मकांडी ब्राहमण को कबीर अपना गुरु क्यों बनायेंगे? लेकिन आरएसएस ब्राहमण रामानन्द को कबीर का गुरु बताकर बाबासाहेब डा. आंबेडकर को भी उनके दादा जी के बहाने ब्राहमण रामानन्द का शिष्य बनाने पर तुला हुआ है. दूसरी ओर वह यह भी स्थापित कर रहा है कि बाबासाहेब ब्राहमणधर्म की वैष्णवी पृष्ठभूमि से आते हैं. हो सकता है आरएसएस ने कहीं पूर्वजन्म का यह सिद्धांत भी गढ़ लिया हो कि बाबासाहेब डा. आंबेडकर पूर्वजन्म के ब्राहमण थे. ब्राहमण इस तरह की गल्पें कबीर और रैदास के बारे में गढ़ ही चुके हैं. वे इस भ्रम में जीते हैं कि जान सिर्फ ब्राहमण के पास ही होता है. और अगर कोई अब्राहमण, खासकर कोई शूद्र जानी हो गया है, तो वह ब्राहमण पृष्ठभूमि से ही हो सकता है. यही शर्मनाक खेल आरएसएस डा. आंबेडकर के साथ खेल रहा है. इस खेल के पीछे उसकी भावना सिर्फ दिलत समुदाय को हिंदुत्व से जोड़े रखना मात्र है. चूँकि डा. आंबेडकर दिलत जातियों के नायक हैं, इसिलए उनके नायक को हिन्दू बनाना उनके मिशन का एजेंडा है. लेकिन डा. आंबेडकर और दिलतों के विरुद्ध यह एक बड़ी खतरनाक साजिश भी है.

आरएसएस ने बाबासाहेब के दादा जी को ब्राह्मणवादी बना दिया है, जो वह नहीं थे, परन्तु उसने यह नहीं लिखा है कि तत्कालीन सवर्ण समाज उन्हें हिन्दू मानता भी था? उनके पिता रामजी के समय में क्या सामाजिक स्थिति थी, इस पर भी उसने कोई टिप्पणी नहीं की है. बाबासाहेब डा. आंबेडकर के प्रामाणिक जीवनी लेखक चांगदेव भवानराव खैरमोडे ने, जिन्होंने उनके साथ अंतिम समय तक काम किया था, उस समय की परिस्थित पर इस प्रकार प्रकाश डाला है-

'उस समय रामजी स्बेदार पर हिन्दू संस्कारों का बड़ा प्रभाव था. हिन्दू संस्कारों के प्रति उनके मन में बड़ी आस्था और श्रद्धा थी. हिन्दू धर्म के असली रूप और उसके परिणामों को जानने-समझने के लिए उनके पास समय ही कहाँ था? उस समय दिलत समाज की स्थिति पूरी तरह गितहीन और लाचार थी. अधर्म भी उनके लिए धर्म था. दिलत तो अपने आप को हिन्दू समझता था, किन्तु सवर्ण लोग उन्हें हिन्दू समझने के लिए तैयार नहीं थे.' (6)

इससे स्पष्ट समझा जा सकता है कि दिलतों के लिए उन्नीसवीं शताब्दी का दौर धर्म और अधर्म के अंतर को समझने का नहीं था. अशिक्षा के उस दौर में जैसा ब्राहमण समझाते थे, बस वही उनके लिए धर्म होता था. और यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि ब्राहमणों ने उन्हें क्या समझाया होगा? उन्होंने दिलतों को स्वतंत्रता, समानता और समान मानव-अधिकारों का पाठ तो पढ़ाया नहीं होगा. उन्होंने उन्हें ब्राहमण-भिक्त का ज्ञान ही समझाया होगा. इस ब्राहमणवाद के निहितार्थ को समझने का उनके पास कोई विज्ञान नहीं था. खैरमोडे ने सही कहा है कि 'उस समय दिलत समाज की स्थिति पूरी तरह गतिहीन और लाचार थी.' और 'अधर्म ही उनके लिए धर्म था.' उसी अधर्म को, जिसमें रामजी हिन्दू संतों की रचनाएँ गुनगुनाते रहते थे, आरएसएस उसे धर्म बता रहा है, और कह रहा है कि उसी ने बाबासाहेब के मनुष्य का गठन किया था. अगर उन अभंगों ने उनके व्यक्तित्व का गठन किया भी था, तो एक ब्राहमणवादी हिन्दू के रूप में नहीं, बल्कि उसके विरोध में उन अभंगों ने बाबासाहेब के ज्ञानचक्षु खोले थे.

कटु सत्य यह है कि बाबासाहेब को धर्म और अधर्म की पिहचान बुद्ध के दर्शन से हुई थी. स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का ज्ञान उन्हें बुद्ध से प्राप्त हुआ था. इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं स्पष्ट करते हुए कहा था कि वे गीता के दर्शन को नकारते हैं. यह उन्होंने 3 अक्टूबर 1954 को आकाशवाणी से प्रसारित एक वार्ता में कहा था. उन्होंने कहा था-

'प्रत्येक व्यक्ति का एक जीवन-दर्शन होता है, क्योंकि हरेक व्यक्ति का अपने को जीने का एक तरीका होता है, और इसी का नाम दर्शन है.

'मैं स्पष्ट रूप से भगवद्गीता में वर्णित हिन्दू समाज-दर्शन को अस्वीकार करता हूँ, क्योंकि यह उस सांख्य-दर्शन के त्रिगुण पर आधारित है, जो मेरे विचार में किपल-दर्शन का एक क्रूर विकृतीकरण है और जिसने हिन्दू सामाजिक जीवन के कानून के रूप में जातिप्रथा और श्रेणीकृत असमानता के सिद्धांत की रचना की है.'(7)

डा. आंबेडकर के इस कथन से आरएसएस के इस मिथ्या प्रचार का स्वतः ही खंडन हो जाता है कि उन्होंने गीता से प्रेरणा ली थी. उनके पिता को चाहे कितने ही संतों के सबद याद हों, पर सीधी बात यह है कि उनका जीवन-दर्शन स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता का था, और ये तीनों शब्द हिन्दूधर्म के किसी भी शास्त्र और किसी भी संत-वाणी में नहीं मिलते हैं. अतः जब ये तीनों शब्द हिन्दूधर्म के हैं ही नहीं, फिर वे हिंदुत्व से प्रभावित कैसे हो सकते हैं? ये तीनों शब्द उनके जीवन-दर्शन में कहाँ से आये? इस सम्बन्ध में उन्होंने उसी आकाशवाणी-वार्ता में इस प्रकार स्पष्ट किया है–

'सकारात्मक रूप से मेरे सामाजिक दर्शन को तीन शब्दों में रखा जा सकता है-स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता. किन्तु कोई भी यह न समझे कि ये मैंने फ़्रांस की क्रान्ति से लिए हैं. मैंने इन्हें वहां से नहीं लिया है. मैंने इन्हें अपने गुरु बुद्ध की शिक्षाओं से ग्रहण किया है. मेरा दर्शन एक मिशन है. मुझे गीता के त्रिगुण सिद्धांत के विरुद्ध धर्मांतरण के लिए काम करना है. आजकल भारतीय दो भिन्न विचारधाराओं से शासित हैं. उनकी राजनैतिक विचारधारा संविधान में दी गई प्रस्तावना में निहित स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता के जीवन की है. पर, उनकी सामाजिक विचारधारा हिन्दूधर्म पर आधारित है, जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता को अस्वीकार करती है.'(8)

इसमें संदेह नहीं कि बाबासाहेब परिवार धार्मिक था, जैसा कि प्राय: सभी गरीब परिवार होते हैं. धार्मिक परिवारों में पूजापाठ और अंधविश्वास सामान्य बात है. बाबासाहेब का लालन-पालन भी ऐसे ही धार्मिक वातावरण में हुआ था. इसके बावजूद पूजापाठ के अंधविश्वास में उनका मन न रमता था. उनके पिता रामजी सूबेदार ने कबीरपंथ की दीक्षा ली थी. कबीरपंथ में यह कड़ा नियम है कि उसमें शराब और मांस वर्जित है. रामजी ने भी कबीरपंथी बनकर शराब और मांस का सेवन त्याग दिया था. चांगदेव लिखते हैं कि 'कबीरपंथ की दीक्षा लेने के बाद घर का वातावरण पूरी तरह बदल गया था. उनको (रामजी को) छोड़कर घर के अन्य लोग मांसाहार करते थे. अब उनके घर में दो चूल्हे जलते थे. जिस दिन घर में मांस पकता था, उस दिन मांस पकाने वाला चूल्हा अलग होता था और शाकाहार वाला चूल्हा अलग जलता था. भिक्त, भजन और पूजा के कारण उनके घर का माहौल कैसे बना हुआ था, इसके बारे में डा. आंबेडकर स्वयं कहते हैं-

'हमारा परिवार गरीब था. फिर भी उसके कारण घर का वातावरण स्पष्ट रूप से पढ़े-लिखे परिवार के योग्य ही था. हम लोगों में पढ़ने की अभिरुचि पैदा हो, हमारा चिरत्र अच्छा बने, इसके लिए हमारे पिता बहुत ही सावधानी बरतते थे. वे हम लोगों को भोजन के लिए बैठने से पहले पूजा-स्थान में बिठाकर भजन, अभंग, दोहे आदि कहने लगते थे. हम सभी में से मैं हमेशा ही टालमटोल करता था…हमारे पिता जी को सारा का सारा पाठ पूरी तरह कंठस्थ था. वे बिना रुके अभंग के बाद अभंग कह सकते थे. पिताजी के पाठान्तर का हमारे लिए बड़ा आकर्षण था. उसी प्रकार मेरी बहिनें अपने मधुर गले से जब अभंग गाती थीं, तब मुझे भी ऐसा लगता था कि धर्म और धार्मिक शिक्षा मनुष्य के जीवन के लिए जरूरी है. ...पिताजी द्वारा कंठस्थ जान के कारण मुझे मुक्तेश्वर, तुकाराम आदि संत कवियों के काव्य याद हो गए हैं. केवल इतना ही नहीं, मैं उन काव्यों के बारे में मन में सोचने लगा हूँ. मराठी संत कवियों का गहरा अभ्यास करने वाले मेरे जैसे बहुत ही कम लोग होंगे,'(9)

हिन्दू संतों के इसी विशद अध्ययन के बल पर डा. आंबेडकर ने गांधीजी को उत्तर दिया था कि-

'किसी भी हिन्दू संत ने जातिव्यवस्था पर कभी भी हमला नहीं किया. इसके विपरीत वे जातिव्यवस्था में पक्के विश्वास करने वाले रहे हैं. वे उसी जाति के होकर जिए और मरे, जिसमें पैदा हुए थे. ज्ञानदेव ब्राहमण के रूप में अपनी प्रतिष्ठा से इतने उत्कट रूप से जुड़े हुए थे कि जब ब्राहमणों ने उन्हें समाज में बने रहने से इनकार कर दिया, तो उन्होंने ब्राहमण पद की मान्यता पाने के लिए जमीन-आसमान एक कर दिया था. संत एकनाथ अछूतों को छूने और उनके साथ भोजन करने का साहस इसलिए करते थे, क्योंकि वे मानते थे कि इस पाप को गंगा में स्नान करके धोया जा सकता है. मेरे विचार में किसी भी हिन्दू संत ने छुआछूत के खिलाफ अभियान नहीं चलाया.'(10)

यह उद्धरण इसलिए दिया गया, ताकि आरएसएस के इस दूषित विचार का खंडन किया जा सके कि बाबासाहेब को अगर हिन्दू संतों के पद याद थे, तो इसका यह मतलब कदाचित नहीं है कि उनसे उन्हें जातिवाद के विरुद्ध लड़ने की कोई प्रेरणा मिली हो. इसके विपरीत वे उन पदों के आधार पर ही इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि सारे हिन्दू संत जातिवादी थे.

'राष्ट्रोदय' में प्रकाशित 'बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर' लेख में आरएसएस ने आगे लिखा है–

'1913 में बड़ौदा महाराज सयाजीराव गायकवाड़ से प्राप्त छात्रवृत्ति के साथ भीमराव कोलिम्बिया विश्वविद्यालय में पढ़ने गए. न्यूयार्क स्थित इस विश्वविद्यालय को उन्होंने इसिलए छोड़ा कि वहाँ के भोजन में गोमांस रहता था. बाबासाहेब के नाम पर संस्था बनाकर 'बीफ फेस्टिवल' करने वाले लोग उनके प्रति निकृष्ट द्रोह करते हैं.'(11)

इस घटना का उल्लेख करने के पीछे आरएसएस का निहितार्थ सिर्फ यह दिखाना है कि डा. आंबेडकर आरएसएस की तरह ही गोभक्त थे. इस घटना का सही वर्णन चांगदेव भवानराव खैरमोडे ने इस तरह किया है- 'उन्होंने यूनिवर्सिटी के छात्रावास 'हार्टले हाल' में पहला एक सप्ताह गुजारा. लेकिन वहां का भोजन आमतौर पर गाय के मांस का बना होता था और वह भी अच्छी तरह पकाया हुआ नहीं होता था. वहां का भोजन भीमराव को पसंद नहीं आया. इसलिए उन्होंने 'हार्टले हाल' छोड़ दिया.' (12)

खैरमोडे ने यह उद्धरण डा. आंबेडकर के 4 अगस्त 1913 को शिवनाक गौनाक जमेदार को भी लिखे गए पत्र से दिया है. यह पत्र अंग्रेजी में है, जिसमें ये पंक्तियाँ हैं— 'I don't like the food and I don't think I will, as majority of the dishes are ill-cooked and of beef.' इससे यह पता चलता है कि बाबासाहेब एक सप्ताह तक 'हार्टले हाल' छात्रावास में बीफ खाते रहे थे. बीफ का मतलब सिर्फ गोमांस नहीं होता है. उसमें भैंस और भैंसे का भी मांस भी शामिल होता है. इससे कहीं भी यह साबित नहीं होता है कि उन्होंने बीफ इसलिए छोड़ा था कि वे गोभक्त थे, बिल्क इसलिए छोड़ा था, क्योंकि वह खराब तरीके से पकाया जाता था, इसलिए बाबासाहेब डा. आंबेडकर को गोभक्त बनाने की आरएसएस की साजिश से दिलतों को सावधान रहने की जरूरत है.

२

'मूकनायक' का पहला अंक 31 जनवरी 1920 को निकला था. उसके मुखपृष्ठ पर तुकाराम का यह अभंग छापा गया था–

'काय करूं आता धरुनिया भीड.

नि:शंक हे तोंड वाजविले.

नव्हे जगी कोणी मुकियांचा जाण.

सार्थक लाजून नव्हे हित.'

इसका अर्थ है- 'अब मैं संकोच करके क्या करूं. मुझे अपना मुंह खोलने के लिए विवश किया गया है. इस संसार में जो अबोल (मूक) हैं, उनकी ओर से बोलने वाला कोई नहीं है. यह जानकार भी संकोच करने में कौन सी भलाई है?' (13)

डा. आंबेडकर ने अनेक संतों की वाणी में से संत तुकाराम के अभंग को चुना था, जो 'मूक नायक' की पत्रकारिता के अनुकूल था. इस अभंग में मूक लोगों के दर्द को अभिव्यक्ति देने की बात कही गई है. यह अभंग हिन्दुओं का उत्पीड़न झेल रहे अछूतों के बारे में है, जिनकी मुक्ति के लिए आवाज उठाने वाला कोई नहीं था.

आगे आरएसएस ने बाबासाहेब डा. आंबेडकर को मन्दिर-प्रवेश अभियान से जोड़ते हुए लिखा है-

'बाबासाहेब ने मन्दिरों में प्रवेश के लिए कई सत्याग्रह चलाए. इसमें अमरावती का अम्बादेवी मन्दिर सत्याग्रह, पूना का पार्वती मन्दिर सत्याग्रह तथा नासिक का कालाराम मन्दिर सत्याग्रह प्रमुख हैं. उस समय का उनका सोच यह था जो अम्बादेवी मन्दिर सत्याग्रह के समय व्यक्त हुआ (अगस्त 1927) –

'हिंदुत्व पर जितना स्पृश्यों का अधिकार है, उतना ही अस्पृश्यों का भी है. हिंदुत्व की प्रतिष्ठा जितनी विशष्ठ जैसे ब्राहमणों, कृष्ण जैसे क्षत्रिय, हर्ष जैसे वैश्य, तुकाराम जैसे शूद्र ने की, उतनी ही वाल्मीिक, चोखामेला व रविदास जैसे अस्पृश्यों ने भी की है. हिंदुत्व की रक्षा करने के लिए हजारों अस्पृश्यों ने अपना जीवन दिया है. व्याध-गीता के अस्पृश्य दृष्टा से लेकर खंड की लड़ाई (इस युद्ध में राजाराम के सेनापित परशुराम भाऊ को मुगलों की गिरफ्त से छुड़ाया गया था) के सिदनाक जैसे अस्पृश्यों ने हिंदुत्व के संरक्षण के लिए अपना सर हथेली पर रखा. उनकी संख्या कम नहीं है. जिस हिंदुत्व को स्पृश्य व अस्पृश्यों ने मिलकर बढ़ाया और उस पर संकट आने पर अपने जीवन की परवाह न करते हुए उसकी रक्षा की. हिंदुत्व के नाम पर खड़े किए गए मन्दिर जितने स्पृश्यों के हैं, उतने ही अस्पृश्यों के भी हैं.' (14)

निस्संदेह हिन्दू धर्म को जिन्दा रखने वाले शूद्र और अस्पृश्य वर्ग ही हैं. आज भी हिंदुत्व के लिए इन्हीं वर्गों को खून बहाते हुए देखा जाता है. सारे हिन्दू संस्कारों, आडम्बरों, रीतिरिवाजों और त्यौहारों को यही वर्ग अपने कन्धों पर ढो रहे हैं. होली, दिवाली, दशहरा, रामलीला, कृष्णलीला, नवरात (दुर्गा पूजा) सब इन्हीं के बल पर अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं. जबिक, ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग इन पर शासन करने वाला, हिंदुत्व का व्यापार करने वाला और उससे सर्वाधिक लाभ उठाने वाला वर्ग है. इसलिए इस बात में भी संदेह नहीं होना चाहिए कि जिस दिन शूद्र और अस्पृश्य वर्गों के कन्धों से हिंदुत्व का जुआ उतर जायेगा, तो सारे हिन्दू मन्दिर और व्यापार गधे के सर से सींग की तरह गायब हो जायेंगे. यही डर है कि ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों मिलकर शूद्रों और अस्पृश्यों (पिछड़ी और दिलत जातियों) को सत्ता बल से, धन बल से और राजनीति-बल से अनपढ़ और गरीब बनाकर रखे हुए हैं, तािक वे आजीवन शासक बने रहें.

डा. आंबेडकर ने कुछ भी गलत नहीं कहा था. देवताओं की मूर्तियाँ बनाने वाले वे, मन्दिरों का निर्माण करने वाले वे, उनकी रक्षा करने वाले वे, यानी शूद्र और अस्पृश्य ! किन्त् मन्दिरों में प्रवेश करने वाले हिन्दू, उनकी कमाई खाने वाले हिन्दू और उनके नाम पर उन्माद भड़काने वाले हिन्दू, यानी द्विज ! डा. आंबेडकर ने बिल्क्ल सही कहा था कि 'हिंदुत्व की रक्षा करने के लिए हजारों अस्पृश्यों ने अपना जीवन दिया है.' परन्त् उन्होंने यह सवाल भी उठाया था कि हिंद्त्व की रक्षा करके अस्पृश्यों को क्या मिला? हिंद्त्व ने उनके लिए क्या किया? क्या उन्हें सभ्यता का प्रकाश दिया? क्या उन्हें मन्ष्य के बराबर दर्जा दिया? आरएसएस महाराणाप्रताप को हिंद्त्व का नायक मानता है. पर क्या उसने कभी उन लाखों खानाबदोश वीरों की चिंता की, जो राणाप्रताप के साथ जंगलों में घास की रोटी खाते हुए जीते थे, और जिन्होंने मरते दम तक राणाप्रताप का साथ दिया था. आज उनके वंशज किस ब्री हालत में दर-दर भटकते हैं, उस हिंद्त्व ने उनके लिए क्या किया, जिसके लिए उनके पूर्वजों ने अपना जीवन दिया? आरएसएस ने कभी उनकी कोई स्ध ली? उनका प्नर्वास किया? उनकी शिक्षा का प्रबंध किया? उत्तर है, हिंद्त्व के ठेकेदार आरएसएस ने क्छ नहीं किया. वह यह कहकर तो दलित वर्गों पर प्रभाव डालता है कि उन्होंने हिंद्त्व की रक्षा के लिए यह किया है, वह किया है, पर वह यह क्यों नहीं बताता कि उसने दलितों के विकास के लिए क्या किया है, और जातिप्रथा के विनाश के लिए क्या किया है? डा. आंबेडकर ने अपने निबर्न्ध 'Untouchability And Lawlessness' में लिखा है, कि 'हिन्दू समझते हैं कि दलित जातियां उनकी सेवा के लिए पैदा की गयी हैं.' (15)

वे एक अन्य निबन्ध 'Civilization or Felony' में लिखते हैं कि हिन्दू कहते हैं कि उनकी सभ्यता दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता है, तो इस सबसे पुरानी हिन्दू सभ्यता ने भारत की जरायमपेशा जातियों, आदिम जन जातियों और अछूत जातियों को क्या दिया है? क्या उन्हें समानता का अधिकार और सभ्यता का प्रकाश दिया है?' (16) यही प्रश्न आज आरएसएस से पूछा जाना चाहिए कि वह इन अस्पृश्यों को किस आधार पर हिन्दू मानता है, जबिक उसने इनके लिए कुछ किया ही नहीं है? हकीकत में इन जातियों का जो भी थोड़ा सा विकास हुआ है, वह डा. आंबेडकर के प्रयासों से लागू कराए गए आरक्षण के कानून से हुआ है, जिसे भी आरएसएस समाप्त करने की बयानबाजी करता रहता है.

आरएसएस ने दलितों को हिंद्त्व से जोड़ने के लिए एक और प्रसंग का सहारा लिया है. उसने लिखा है-

'बाबासाहेब को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विषय में पूरी जानकारी थी. हिंदूधर्म छोड़ने की उनकी घोषणा के बाद 1936 के मकर संक्रांति उत्सव (पुणे, 13 जनवरी 1936) में संघ संस्थापक डा. हेडगेवार के अनुरोध पर वे कार्यक्रम में अध्यक्षता हेतु आए. कार्यक्रम समाप्त होने के बाद उपस्थित स्वयंसेवकों के बीच घूम-घूमकर उन्होंने प्रत्यक्ष जानकारी की कि संघ में लगभग 15 प्रतिशत कथित अछूत समुदायों से हैं. वे अपने व्यवसाय के निमित्त दापोली गए और वहां शाखा पर जाकर स्वयंसेवकों से खुले मन से बातचीत की.' (17)

इसके बाद वह लिखता है-

'संघ के जातिविहीन समरस समाज बनाने के प्रयत्न बाबासाहेब को प्रभावित करते थे.

'जब नेहरु ने महात्मा गाँधी के हत्याकांड में वीर सावरकर और गोलवलकर (श्री गुरु जी) को गिरफ्तार किया, और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) पर प्रतिबन्ध लगाया, तब बाबासाहेब ने, जो तत्कालीन कानून मंत्री थे, विरोध जताया था. संघ पर से प्रतिबन्ध हटवाने की उन्होंने कोशिश की, जिसके लिए संघ प्रमुख श्री गोलवलकर ने सितम्बर 1949 में उनसे मिलकर धन्यवाद दिया था. यह भी स्मरणीय है कि 1952 में मुंबई से लोकसभा के चुनाव तथा 1954 में भंडारा से लोकसभा के उपचुनाव में बाबासाहेब शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के प्रत्याशी थे, तब संघ के कार्यकर्ताओं व अन्य हिन्दुत्ववादी दलों ने बाबासाहेब का समर्थन किया था.' (18)

अगर यह सच होता, तो डा. आंबेडकर चुनाव क्यों हारते? डा. बृजलाल वर्मा ने, जो आरएसएस की विचारधारा के लेखक हैं, लिखा है कि डा. आंबेडकर इसलिए हारे थे, क्योंकि उन्होंने मुसलमानों का पक्ष लिया था और कश्मीर के विभाजन की बात कही थी. (19)

इससे स्पष्ट समझा जा सकता है कि आरएसएस कितना बड़ा झूठ बोल रहा है. क्या कोई यकीन करेगा कि आरएसएस और हिन्दुत्ववादी दलों ने चुनावों में उन डा. आंबेडकर का समर्थन किया होगा, जिन्होंने मुसलमानों के पक्ष की बात कही हो और कश्मीर के विभाजन को सही ठहराया हो? सच यह है कि यही आरएसएस और अन्य हिन्दुत्ववादी दल उन दिनों डा. आंबेडकर के हिन्दू कोड बिल पर उन्हें हिन्दूधर्म का शत्रु कहकर उनके खिलाफ सड़कों पर प्रदर्शन कर रहे थे और उनके पुतले जला रहे थे. रामचन्द्र गुहा ने अपने एक लेख 'Which Ambedkar' में ठीक ही सवाल उठाया है कि आरएसएस जो जयजयकार आज

आंबेडकर की कर रहा है, वह जयजयकार उनके जीवनकाल में उसने क्यों नहीं की थी? ख़ास तौर से उस वक्त, जब डा. आंबेडकर संविधान का निर्माण कर रहे थे और हिन्दू स्त्रियों को अधिकार देने के लिए हिन्दू पर्सनल लॉ बना रहे थे, तो आरएसएस ने उनके इन दोनों ही कार्यों का विरोध किया था. उस समय आरएसएस के मुखपत्र 'The Organiser' के 30 नवम्बर 1949 के अंक में, संविधान के ड्राफ्ट पर, जिसे डा. आंबेडकर ने संविधान सभा को सौंपा था, जो सम्पादकीय लिखा गया था, उसमें कहा गया था– 'भारत के नए संविधान के बारे में सबसे खराब बात यह है कि इसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे भारतीय कहा जाए. इसमें न भारतीय कानून हैं, न भारतीय संस्थाएं हैं, न शब्दावली और पदावली है. इसमें प्राचीन भारत के अद्वितीय कानूनों के विकास का भी उल्लेख नहीं है, जैसे मनु के कानूनों का, जो स्पार्टा के लाइकुर्गुस या पिश्या के सोलोन से भी बहुत पहले लिखे गए थे. आज मनुस्मृति के कानून दुनिया को प्रेरित करते हैं. किन्तु हमारे संवैधानिक पंडितों के लिए उनका कोई अर्थ नहीं है.' (20) इसी लेख में गुहा और भी बताते हैं कि आरएसएस ने आंबेडकर को हिन्दू-विरोधी बताते हुए उनके द्वारा किये गए हिन्दू विवाह सुधारों के खिलाफ महीनों तक आन्दोलन चलाया था. सवाल है कि आरएसएस के लिए जो आंबेडकर 1949 से 1952 तक हिन्दू-विरोधी थे, वे चुनाव में उनका समर्थन कैसे कर सकते थे? फिर आज वह उसकी नजर में हिन्दू समर्थक, गोभक्त और भगवा-प्रेमी कैसे हो गए? क्या वह दिलतों की आँखों में धूल नहीं झोंक रहा है?

आरएसएस ने आगे लिखा है-

'बाबासाहेब ने जुलाई 1947 में संविधान सभा की झंडा समिति की बैठक में भगवाध्वज को राष्ट्रध्वज घोषित करने की चर्चा की थी. इसके अलावा उन्होंने संस्कृत भाषा को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव 11 सितम्बर 1949 को 13 अन्य सदस्यों को साथ लेकर प्रस्तुत किया और इस मामले पर पश्चिम बंगाल से चुने गए एक सदस्य लक्ष्मीकान्त मैत्र के साथ संस्कृत में वार्तालाप कर संविधान सभा के सदस्यों को चिकत कर दिया था. यद्यपि दोनों ही मामलों में बाबासाहेब अपनी बात मनवा नहीं सके, पर उनकी सोच जगजाहिर हुई.'(21)

इसमें दो बातें कही गई हैं, एक भगवा ध्वज की, और दूसरी संस्कृत की. पहली बात में झूठ का तत्व शामिल है, और दूसरी बात पूरी तरह सच है. पहली बात में भगवा शब्द आरएसएस का अपना गढ़ा हुआ है. बाबासाहेब ने राष्ट्रध्वज में केसरिया अर्थात काषाय रंग और अशोक चक्र का समर्थन किया था, जिनका सम्बन्ध बौद्धधर्म से है. संस्कृत के सम्बन्ध में प्रमाण मिलता है कि भारत के विधि मंत्री के रूप में डा. आंबेडकर उन लोगों में थे, जिन्होंने संस्कृत को भारत संघ की राजभाषा बनाने का प्रस्ताव रखा था. इस प्रस्ताव पर पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने पीटीआई के संवाददाता को कहा था, 'What is wrong with Sanskrit?' (इसमें गलत क्या है?) (22)

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत का प्रस्ताव रखने के पीछे बाबासाहेब डा. आंबेडकर का उद्देश्य राष्ट्रवादी हिन्दू नेताओं को, जो संस्कृत को भारतीय अस्मिता से जोड़ते थे, उनके छद्म का आईना दिखाना था. वे जानते थे कि ब्राह्मण कभी भी संस्कृत को जन-जन की भाषा नहीं बनने देंगे, क्योंकि ऐसा करने से उनके सारे रहस्य पर्दे से बाहर आ जायेंगे. और यही हुआ, ब्राह्मणों ने संस्कृत को राजभाषा बनाने के प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया.

आरएसएस ने अपने संदर्भित लेख में जिन दो बातों का जोर देकर जिक्र किया है, उनमें एक बात भगवद्गीता पर बाबासाहेब की आस्था के सम्बन्ध है. इस विषय पर के. सुब्रामणियम की एक टिप्पणी देख ली जाये, जो 'फ्री प्रेस इंडिया' के 7 दिसम्बर 1944 के अंक में प्रकाशित हुई थी. इसमें उन्होंने लिखा था– 'गीता पर डा. आंबेडकर का विष-वमन किसी को भी आश्चर्य में डाल सकता है. डाक्टर (आंबेडकर) ने गीता के अध्ययन में 15 वर्ष खर्च किए हैं और यह चिकत कर देने वाली खोज की है कि इस किताब का लेखक या तो पागल आदमी था या फिर मूर्ख था.' (23) यह मूर्ख लेखक दिलतों के उत्थान के कार्य में डा. आंबेडकर की क्या सहायता कर सकता था?

आरएसएस ने दूसरा जोर इस बात पर दिया है कि डा. आंबेडकर ने मुसलमानों को न सुधरने वाली कौम कहा था. उनकी पाकिस्तान पर लिखी जिस किताब के हवाले से वह उन्हें मुस्लिम विरोधी बताता है, (जिसका एक उद्धरण इस लेख के आरम्भ में दिया गया है), उसी किताब में वे आगे क्या लिखते हैं, उस पर आरएसएस कोई चर्चा नहीं करता है. वे म्सलमानों में स्धार-भावना न होने का कारण हिंद्त्व को ही बताते हैं. वे लिखते हैं, 'भारत से बाहर, तुर्की जैसे अनेक मुस्लिम देशों में क्रांतिकारी स्वरूप के सुधार हुए हैं. जब इन देशों के म्सलमानों के मार्ग में इस्लाम बाधक नहीं बना, तो वह भारत के म्सलमानों के मार्ग में बाधक क्यों बना ह्आ है?' वे जवाब देते हैं, 'इसका सामाजिक कारण मुझे यह दिखाई देता है कि यहाँ म्सलमान एक ऐसे हिन्दू वातावरण में रहते हैं, जो धीरे-धीरे खामोशी से उन पर हावी होता जा रहा है. इसे वे अपने इस्लामीकरण के लिए खतरा महसूस करते हैं. इसलिए वे अपने इस्लामीकरण को स्रक्षित रखने के लिए हर वह चीज करते हैं, जो इस्लामिक है.' इसका दूसरा कारण वे यह बताते हैं कि 'भारत में म्सलमान हिन्दू-प्रभ्त्व वाले राजनीतिक वातावरण में रहते हैं. यह वातावरण उन्हें हमेशा यह अन्भव कराता है कि हिन्दू उनका दमन करके उन्हें दलित वर्ग बना देंगे. यही वह चेतना है, जो उन्हें हिन्दू समाज और राजनीति में विलीन होने से बचाने के लिए सतत जागरूक रखती है. यही चेतना उन्हें, मेरे विचार में, अन्य देशों के मुस्लिमों की त्लना में अधिक पिछड़ा बनाए हुए है. मुझे लगता है कि उनकी सारी शक्ति सीटों और पदों के लिए, दूसरे शब्दों में अपने अस्तित्व को बचाने के लिए हिन्द्ओं के विरुद्ध संघर्ष करने में ही लगी रहती है, इसलिए उनके पास स्धारों के लिए समय ही नहीं है.' (24)

इसी वक्त यह भी देख लिया जाय कि आरएसएस जिस हिंदुत्व से डा. आंबेडकर को जोड़ रहा है, उसके बारे में उन्होंने क्या कहा है? उन्होंने सीधे-सीधे आरएसएस जैसे हिन्दुत्ववादियों से प्रश्न किया है–

क्या हिन्दू धर्म समानता का दर्शन है? क्या हिन्दू धर्म स्वतंत्रता का दर्शन है?' क्या हिन्दू धर्म भ्रातृत्व का दर्शन है? इन तीनों प्रश्नों के उत्तर आरएसएस के पास नहीं हैं. इसलिए डा. आंबेडकर इन प्रश्नों के संदर्भ में कहते हैं–

'हिन्दूधर्म के दर्शन को मानवता का धर्म-दर्शन नहीं कहा जा सकता. बाल्फोर के शब्दों में अगर कहूँ, तो हिन्दूधर्म सामान्य मनुष्य के अन्तरंग जीवन को खत्म कर देता है. अगर यह वास्तव में कुछ करता भी है तो सिर्फ जीवन को पंगु बनाने का काम करता है. हिन्दू धर्म में सामान्य मनुष्यों के लिए कोई सुख

नहीं है, इसमें सामान्य मानव-दुखों के लिए कोई संवेदना नहीं है, और इसमें कमजोर लोगों के लिए कोई सहायता भी नहीं है. यह ब्राह्मणों का स्वर्ग और सामान्य आदमी का नर्क है.' (25)

अंत में, इस बात पर भी चर्चा कर ही ली जाए कि डा. आंबेडकर साम्यवाद के विरोधी थे. आरएसएस ने लिखा है-

'बाबासाहेब का खुद को अनुयायी बताकर कम्युनिस्टों के साथ गठबंध-तालमेल की कोशिश भी उनके विचार के विरुद्ध है. बाबासाहेब ने साम्यवाद को ढकोसला बताया था. उन्होंने कहा था कि 'सवर्ण हिन्दुओं और कम्युनिस्ट के बीच गोलवलकर (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन प्रमुख) एक अवरोध है. उसी प्रकार परिगणित जातियों और कम्युनिस्ट के बीच आंबेडकर अवरोध है. उनका मानना था कि दुनिया को गौतम बुद्ध एवं कार्लमार्क्स के बीच एक को चुनना होगा.'(26)

यहाँ भी दो बातें कही गई हैं. पहली बात में कोई संदेह नहीं है, आरएसएस मूलत: कम्युनिस्ट विरोधी है. उसकी मुख्य शत्रुता अगर किसी से है, तो वह कम्युनिज्म से ही है. इसलिए वह सदैव उस साम्यवादी दर्शन के खिलाफ रहता है, जो भौतिकवादी और वैज्ञानिक है, और उस ब्राह्मणवादी दर्शन का प्रचार-प्रसार करता है, जो परलोकवादी और अवैज्ञानिक है.. कम्युनिज्म वर्गविहीन समाज का वैज्ञानिक दर्शन है, जो जनता का शोषण करने वाले पूंजीवाद का विरोध करता है. आरएसएस कम्युनिज्म का विरोध करके जनता का शोषण करने वाले पूंजीवाद का समर्थन करता है. अर्थात, वह वर्गवाद, धर्मवाद, जातिवाद और शोषण को पालने वाले कारपोरेट पूजीवाद को स्थापित करता है. इसलिए वह क्रान्ति को रोकने के लिए सवर्ण और कम्युनिज्म के बीच सचमुच एक बड़ा अवरोध हैं. क्या इसी प्रकार दिलतों और कम्युनिस्टों के बीच आंबेडकर भी अवरोध हैं? इसका जवाब हाँ में देना मुश्किल है. यह सच है कि तत्कालीन कम्युनिस्टों के एजेंडे में जाति के सवाल नहीं थे, इसलिए डा. आंबेडकर उनको पसंद नहीं करते थे. इसके विपरीत वे समाजवादियों को पसंद करते थे, जिनके राजनीतिक एजेंडे में दिलत सवाल थे. इसीलिए 1952 के चुनावों में उन्होंने कम्युनिस्टों से तालमेल करने से मना कर दिया था. उन्होंने यहाँ तक कह दिया था कि 'वे कम्युनिज्म में विश्वास ही नहीं करते हैं.' (27) वे बौद्धधर्म को कम्युनिज्म से बेहतर मानते थे, शायद इसी वजह से वे बौद्ध भारत चाहते थे, कम्युनिस्ट भारत नहीं.

किन्तु, बौद्धधर्म में उनके धर्मांतरणके बाद भी स्थितियां बदली नहीं हैं. वे आज जीवित होते तो इस बात को जरूर अनुभव करते कि बौद्ध भारत में भी जाित, गरीबी और शोषण के सवाल बने हुए हैं और समाजवादी शिक्तयां भी इन सवालों की उपेक्षा करके जाितवाद और धर्म की ही पूंजीवादी राजनीित कर रही हैं. इसलिए, भारत को आरएसएस और धर्म की जोंकों से निजात दिलाने का कम्युनिज्म के सिवा कोई रास्ता नहीं है. बाबासाहेब ने स्वयं कहा था कि श्रमिक वर्गों के दो शत्रु हैं–ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद. इन किन्तु, इन दोनों का खात्मा तभी हो सकता है, जब इसके लिए दलित शोषित वर्ग अपनी लड़ाई को वर्गीय बनाएगा.

(साभार: मीडियाविजिल)

सबकी बात

हिंदी पट्टी में अगर नवजागरण की किसी एक प्रतीक प्रतिभा का नाम लेना हो तो राहुल सांकृत्यायन के अलावा कोई दूसरा नहीं सूझेगा। अंधविश्वास के ख़िलाफ़ तर्क और विज्ञान का झंडा बुलंद करने वाले, 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' की अलख जगाने वाले, 'साम्यवाद ही क्यों' समझाते हुए ब्राह्मणवाद पर भीषण प्रहार करने वाले 'महापंडित' राहुल सांकृत्यायन की 125वीं जयंती अप्रैल में थी। प्रस्तुत है इस अवसर पर उनके जीवन और कर्म से परिचित कराता एक लेख

राहुल सांकृत्यायन, जिन्हें ग़रीब किसान और मज़दूर प्यार से राहुल बाबा बुलाते थे, बड़े विद्वान, कई भाषाओं और विषयों के अद्भुत जानकार थे, चाहते तो आराम से रहते हुए बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिखकर शोहरत और दौलत दोनों कमा सकते थे परन्तु वे एक सच्चे कर्मयोद्धा थे। उन्होनें आम जन, ग़रीब किसान, मज़दूर की दुर्दशा और उनके मुक्ति के विचार को समझा। उनके बीच रहते हुए उन्हें जागृत करने का काम किया और संघर्षों में उनके साथ रहे। वे वास्तव में जनता के अपने आदमी थे।

भागो नहीं, दुनिया को बदलो!



राहुल साकृत्यायन (१ अप्रैल १८९३ -१४ अप्रैल १९६३) हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार रहना चाहिए। बाहरी क्रान्ति से कहीं ज्यादा ज़रूरत मानसिक क्रान्ति की है। हमें आगे-पीछे-दाहिने-बायें दोनों हाथों से नंगी तलवारें नचाते हुए अपनी सभी रुढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना होगा।

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

उन तमाम लेखकों व बुद्धिजीवियों से अलग जो अपने ए.सी. कमरे में बैठकर दुनिया और उसमें घटनेवाली घटनाओं की तटस्थ व्याख्या करते हैं, जनता की दुर्दशा की और सामाजिक बदलाव की बस बड़ी-बड़ी बातें करते हैं या पद-ओहदा- पुरस्कार की दौड़ में लग रहते हैं, राहुल ने अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल समाज को बदलने के लिए जनता को जगाने में किया। इसके लिए उन्होंने सीधी-सरल भाषा में न केवल अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें और सैकड़ों लेखे लिखे, बल्कि लोगों के बीच घूम-घूमकर गुलामी और अन्याय के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिए उन्हें संगठित भी किया।

भागो नहीं, दुनिया को बदलो!



राहुल सांकृत्यायन

(9 अप्रैल 1893 -14 अप्रैल 1963) धर्म आज भी वैसा ही हज़ारों मूढ़ विश्वासों का पोषक और मनुष्य की मानसिक दासता का समर्थक है जैसा पाँच हज़ार वर्ष पूर्व था।... सभी धर्म दया का दावा करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के इन धार्मिक झगड़ों को देखिए तो मनुष्यता पनाह माँग रही है।

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

पूर्वी उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ ज़िले में एक पिछड़े गाँव में जन्मे राहुल के मन में बचपन से ही उस ठहरे हुए और रुढ़ियों में जकड़े समाज के प्रति बग़ावत की भावना घर कर गयी और विद्रोह-स्वरूप वे घर से भाग गये। 13 साल की उम्र में एक मन्दिर के महन्त बने, फिर आर्यसमाजी बनकर समाज में रूढ़ियों और मानसिक गुलामी के ख़िलाफ़ अलख जगायी लेकिन भारतीय समाज के सिदयों पुराने गतिरोध, अन्धिविश्वास, कूपमण्डूकता और जाति-पाँति जैसी सामाजिक बुराइयों को लेकर उनके विद्रोही मन में बेचैनी बढ़ती रही और उन्हें लगने लगा कि आर्यसमाज इन सवालों को हल नहीं कर सकता। उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया लेकिन दुनिया-समाज में बराबरी और न्याय क़ायम करने का रास्ता उसके पास भी नहीं था। राहुल को अपने सभी सवालों का जवाब बौद्ध धर्म से भी न मिल पाया। समानता और न्याय पर टिके तथा हर प्रकार के शोषण और भेदभाव से मुक्त समाज बनाने की राह खोजते हुए वे मार्क्सवादी विचारधारा तक पहुँचे। उन्होंने गेरुआ चोगा उतारकर मज़दूरों-किसानों के लिए लड़ने और उनके दिमाग़ों

पर कसी बेड़ियों को तोड़ डालने को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। उन्होंने समझ लिया कि — "साम्यवादी, समाज का आर्थिक निर्माण नयी तरह से करना चाहते हैं और वह निर्माण रफ़् या लीपापोती करके नहीं करना होगा। एक तरह से उसे नयी नींव पर दीवार खड़ी करके करना होगा। भारत की साधारण जनता की ग़रीबी इतनी बढ़ी हुई है कि उसके लिए अनन्त की ओर इशारा नहीं किया जा सकता। हमें अपने काम में तुरन्त जुट जाना चाहिए।"

भागो नहीं, दुनिया को बदलो!



राहुल साकृत्यायन (९ अप्रैल १८९३ -१४ अप्रैल १९६३) रूढ़ियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रूढ़ियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं।

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

उनका स्पष्ट मानना था कि — "जनता के सामने निधड़क होकर अपने विचार को रखना चाहिए और उसी के अनुसार काम करना चाहिए। हो सकता है, कुछ समय तक लोग आपके भाव न समझ सकें और ग़लतफ़हमी हो, लेकिन अन्त में आपका असली उद्देश्य हिन्दू-मुसलमान सभी ग़रीबों को आपके साथ सम्बद्ध कर देगा।"

भागो नहीं, दुनिया को बदलो।



रादुल सांकृत्यायन (१ अप्रैल १८९३ -१४ अप्रैल १९६३)

राष्ट्र की एकता मंचों पर लम्बे-लम्बे भाषण से नहीं होगी। इसके लिए हमें ठोस काम करना होगा। वह ठोस काम यही है कि देश के भीतर धर्म और जाति-भेद ने जितनी दीवारें खड़ी की हैं, उन्हें गिरा देना। हाँ, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या लामज़हब होने से हमारे खान-पान, शादी-ब्याह में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। ज़रूरत पड़ने पर इसके लिए हमें मज़हब से भी लोहा लेने के लिए तैयार रहना चाहिए।

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

और आम ग़रीबों से अपने को जोड़ने तथा रूढ़ियों व परम्पराओं पर प्रचण्ड प्रहार करने के लिए राहुल जी ने आम लोगों की बोलचाल की भाषा में 'भागो नहीं दुनिया को बदलो', 'दिमाग़ी गुलामी', 'तुम्हारी क्षय', 'नइकी दुनिया', 'मेहरारुन के दुरदसा', 'साम्यवाद ही क्यों' जैसी छोटी-छोटी किताबें लिखकर लोगों को जागृत करने का काम शुरू कर दिया। साथ-साथ उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर किसानों और ग़रीबों को जगाना और अंग्रेज़ हुकूमत तथा ज़मींदारों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए संगठित करना भी शुरू किया। कई बार उन्हें जेल में डाला गया लेकिन वहाँ भी वे लगातार लिखते रहे। उनकी कई किताबें तो अलग-अलग जेलों में ही लिखी गयीं।

भागो नहीं, दुनिया को बदलो!



राहुल सांकृत्यायन

(9 अप्रैल 1893 -14 अप्रैल 1963) जिस समाज ने प्रतिभाओं को जीते-जी दफनाना कर्तव्य समझा है और गदहों के सामने अंगूर बिखेरने में जिसे आनन्द आता है, क्या ऐसे समाज के अस्तित्व को हमें पलभर भी बर्दाश्त करना चाहिए?... — ऐसे समाज को जीने देना पाप है। इस पाखण्डी, धूर्त, बेईमान, जालिम, नृशंस समाज को पेट्रोल डालकर जला देना चाहिए।

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

राहुल दूर तक देख सकते थे इसलिए उन्होंने यह समझ लिया था कि भारतीय समाज की तर्कहीनता, अन्धिविश्वास सिदयों पुराने गितरोध, कूपमण्डूकता आदि पर करारी चोट करके ही आगे बढ़ाया जा सकता है। आज़ादी के आन्दोलन में जब धर्म का प्रवेश हुआ था, तभी राहुल ने इस बात को पहचान लिया था कि धार्मिक बँटवारे पर चोट करना बेहद ज़रूरी है। उन्होंने सभी धर्मों में व्याप्त कुरीतियों का ही विरोध नहीं किया बल्कि स्पष्ट रूप से बताया कि धर्म आज केवल जनता को बाँटने और शासकों की गद्दी सलामत रखने का औजार बन चुका है। उन्होंने खुले शब्दों में कहा – "धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है और इसलिए अब मज़हबों के मेल-मिलाप की बातें भी कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? 'मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना' – इस सफ़ेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मज़हब बैर नहीं सिखलाता तो चोटी.दाढ़ी की लड़ाई में हज़ार बरस से आजतक हमारा मुल्क पागल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिये, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मज़हब वालों को दूसरे मज़हब वालों के ख़ून का प्यासा कौन बना रहा है? असल बात यह है – 'मज़हब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का ख़ून पीना।' हिन्दुस्तान की एकता मज़हबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मज़हबों की चिता पर।"

भागो नहीं, दुनिया को बदलो!



राहुल सांकृत्यायन (१ अप्रैल १८९३ -१४ अप्रैल १९६३) ऐसे समाज के लिए हमारे दिल में क्या इज़्ज़त हो सकती है, क्या सहानुभूति हो सकती है? बाहर से धर्म का ढोंग, सदाचार का अभिनय, ज्ञान-विज्ञान का तमाशा किया जाता है और भीतर से यह जघन्य, कुत्सित कर्म! धिक्कार है ऐसे समाज को!! सर्वनाश हो ऐसे समाज का!!!

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

किसानों की लड़ाई लड़ते हुए भी राहुल ने इस बात को नहीं भुलाया कि केवल अंग्रेज़ों से आज़ादी और ज़मीन मिल जाने से ही उनकी समस्याओं का अन्त नहीं हो जायेगा। उन्होंने साफ़ कहा कि मेहनतकशों की असली आज़ादी साम्यवाद में ही आयेगी। उन्होंने लिखा, "खेतिहर मज़द्रों को ख़याल रखना चाहिए कि उनकी आर्थिक मुक्ति साम्यवाद से ही हो सकती है, और जो क्रान्ति आज शुरू हुई है, वह साम्यवाद पर ही जाकर रहेगी।"



राहुता साकृत्यायन (१ अप्रैल १८९३ -१४ अप्रैल १९६३)

भागो नहीं, दुनिया को बदलो!

दुनिया में कोई भी शाख्वत और अपरिवर्तनीय नैतिक नियम या धार्मिक सत्य नहीं है। ये दोनों तो इसी गेस समाज की रचनाएँ हैं। धर्म की राजनीति करने वाली कुटिल ताकतों को विवश होकर अपने पाँव समेटने ही होंगे।

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

वे बिना रुके काम में जुटे रहते। भारतीय समाज की हर बुराई, हर किस्म की दिमाग़ी गुलामी, हर तरह के अन्धिविश्वास, तमाम ग़लत परम्पराओं पर वह चोट करना चाहते थे, उनके विरुद्ध जनता को शिक्षित करना चाहते थे। वे मेहनतकश लोगों से प्यार करते थे और उनके लिए अपना जीवन क़ुर्बान कर देना चाहते थे। जीवन छोटा था, काम बहुत अधिक था। सिदयों से सोये भारतीय समाज को जगाना आसान नहीं था। बाहरी दुश्मन से लड़ना आसान था, लेकिन अपने समाज में बैठे दुश्मनों और ख़ुद अपने भीतर पैठे हुए संस्कारों, मूल्यों, रिवाज़ों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए लोगों को तैयार करना उतना ही कठिन था। राहुल को एक बेचैनी सदा घेरे रहती। कैसे होगा यह सब। कितना काम पड़ा है! वे एक साथ दो-दो किताबें लिखने में जुट जाते। ट्रेन में चलते हुए, सभाओं के बीच मिलने वाले घण्टे-आध घण्टे के अन्तराल में, या सोने के समय में भी कटौती करके वह लिखते रहे। लगातार काम करते रहने से उनका लम्बा, बलिष्ठ, सुन्दर शरीर जर्जर हो गया। पर वह रुके नहीं। यह सिलसिला तब तक चला जब तक मस्तिष्क पर पड़ने वाले भीषण दबाव से उन्हें स्मृतिभंग नहीं हो गया। याद ने साथ छोड़ दिया। आर्थिक परेशानी ने घेर लिया। पूरा इलाज भी नहीं हो सका और 14 अप्रैल 1963 को 70 वर्ष की उम्र में मज़दूरों-किसानों के प्यारे राहुल बाबा ने आँखें मूँद लीं। लेकिन उन्होंने जो मुहिम चलायी उसे आगे बढ़ाये बिना आज हिन्दुस्तान में

इन्क़लाब लाना मुमिकन नहीं है। आज हमारे समाज को जिस नये क्रान्तिकारी पुनर्जागरण और प्रबोधन की ज़रूरत है, उसकी तैयारी के लिए राहुल सांकृत्यायन का जीवन और कर्म हमें सदैव प्रेरित करता रहेगा।



राहुल साकृत्यायन

(9 अप्रैल 1893 -14 अप्रैल 1963)

भागो नहीं, दुनिया को बदलो!

यदि जनबल पर विश्वास है तो हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जनता की दुर्वम्य शक्ति ने, फासिज़्म की काली घटाओं में, आशा के विद्युत का संचार किया है। वही अमोघ शक्ति हमारे भविष्य की भी गारण्टी है।

राहुल फाउण्डेशन द्वारा जारी

मंदिर-मस्जिद में भेद करने वाला योगी नहीं- गुरु गोरखनाथ!

मनोज सिंह

यूपी के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने 6 मार्च को विधानसभा में कहा-'मै हिंदू हूं, ईद नहीं मनाता। इसका मुझे गर्व है। मै जनेऊ धारण कर सिर पर टोपी डालकर कहीं मत्था नहीं टेकता। '

योगी आदित्यनाथ मुख्यमंत्री होने के साथ-साथ नाथ सम्प्रदाय के सबसे बड़े मठ गोरखनाथ मंदिर के महंत भी हैं। गोरखपुर में स्थित इस मठ में ही योगी आदित्यनाथ, नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और 15 फरवरी 1994 में मठ के उत्तराधिकारी बने। नाथ सम्प्रदाय की स्थापना गुरू गोरखनाथ ने की थी। योगी आदित्यनाथ हिंदू होने के कारण ईद नहीं मनाने की बात कर रहे हैं लेकिन नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरू गोरखनाथ ने योगियों को मंदिर-मस्जिद, हिन्दू-मुसलमान विवाद से दूर रहने और तटस्थ रहने की बात कही है। गोरखनाथ की एक सबदी है-

हिंदू ध्यावे देहुरा, मुसलमान मसीत जोगी ध्यावे परम पद, जहां देह्रा न मसीत

(योगी मंदिर-मस्जिद का ध्यान नहीं करता। वह परम पद का ध्यान करता है। यह परम पद क्या है, कहां है ? यह परम पद तुम्हारे भीतर है)

गोरखनाथ लोगों में भेद न करने की भी नसीहत देते हैं। साथ ही मीठा बोलने और सदैव शांत रहने की बात कहते हैं-

मन में रहिणां, भेद न कहिणां बोलिबा अमृत वाणी अगिला अगनी होइबा हे अवध् तौ आपण होइबा पाणीं

(किसी से भेद न करो, मीठा बानी बोलो। यदि सामने वाला आग बनकर जला रहा है तो हे योगी तुम पानी बनकर उसे शांत करो)

गोरखनाथ की कुछ सबदियां गोरखनाथ मंदिर की दीवारों पर भी लिखी है। डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ द्वारा रचित 40 पुस्तकों की खोज की जिसमें अधिकतर संस्कृत में है। कुछ पुस्तकें हिन्दी में हैं। डा. बड़थ्वाल ने गोरखनाथ की सबदियों को 'गोरखबानी 'में संग्रहीत और सम्पादित किया। 'गोरखबानी' में 275 सबदियां और 62 पद हैं।

गोरखनाथ के संस्कृत ग्रन्थ जहां साधना मार्ग की व्याख्या है वहीं उनके पद और सबदी में साधना मार्ग की व्याख्या के साथ-साथ धार्मिक विश्वास, दार्शनिक मत हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार गोरखनाथ की हिन्दी की रचनाएं दो संतों के संवाद के रूप में है जो नाथपंथियों की अपनी खोज है।

'मिछिन्द्र गोरख बोध' में गोरखनाथ के सवाल हैं जिसका जवाब उनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ ने दिया है। गोरखबानी की सबदियों में आडम्बरों का जबर्दस्त विरोध है। इसमें योगियों और सामान्य जन के लिए नीति विषयक उपदेश हैं।

गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय को जग जगत से तटस्थ और उदासीन रहने वाला कहा है। उन्होंने अपनी एक सबदी में इसे स्पष्ट किया है-

कोई न्यंदै कोई ब्यंदै कोई करै हमारी आसा गोरख कहे सुनौ रे अवधू यह् पंथ खरा उदासा

(कोई हमारी निंदा करता है, कोई प्रशंसा, कोई हमसे वरदान, सिद्धि चाहता है किंतु मेरा रास्ता तटस्थता, अनासक्ति और वैराग्य मार्ग का है) उन्होंने एक और सबदी में यूं कहा है-

गोरख कहै सुन रे अवधू जग में ऐसा रहना आखें देखिबा कानै सुनिबा मुख थै कछू न कहणां

(गोरखनाथ कहते हैं कि जीव जगत में योगी अपनी आंख से सब देखे और कान से सुने लेकिन क्या सही है क्या गलत इसके विवाद में न पड़े और इसके बारे में अपना मत न व्यक्त करे। योगी को द्रष्टा बनना चाहिए)

योगी आदित्यनाथ अपने बयानों से लगातार विवाद में रहते हैं जबिक गुरू गोरखनाथ ने कहा है-

कोई वादी कोई विवादी, जोगी कौ वाद न करना अठसिठ तीरथ समंदि समावैं, यूं जोगी को गुरूमिख जरनां

(जोगी को बेवजह विवाद में नहीं रहना चाहिए। जैसे चौसठ तीर्थों का जल समुद्र में मिल जाता है उसी तरह परम ज्ञान की प्राप्ति ही योगी की सिद्धि है)

गोरखनाथ का समय वह समय है जब भारत में मुसलमानों का आगमन हो रहा था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-गोरखनाथ के समय में समाज में बड़ी उथल-पुथल थी। मुसलमानों का आगमन हो रहा था। बौद्ध साधना मंत्र-तंत्र, टोने-टोटके की ओर अग्रसर हो रही थी। ब्राह्मण धर्म की प्रधानता स्थापित हो गई थी फिर भी बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक भारी सम्प्रदाय था जो ब्राह्मण और वेद की प्रधानता को नहीं मानता था। गोरखनाथ के योग मार्ग में ऐसे अनेक मार्गों का संगठन हुआ। इन सम्प्रदायों में मुसलमान जोगी अधिक थे।'

गोरखनाथ के समय हिन्दू-मुसलमान के झगड़े उतने प्रबल नहीं थे जितने कि कबीर के समय। फिर भी गोरखनाथ ने दोनो धर्मों के लोगों से कहा कि उनके धर्म का मूल उद्देश्य एक ही है।

हिन्दू आषे अलष कौ तहां राम अछै न खुदाई

(हिन्दू, परमात्मा को राम कहते हैं। इसी तरह इस्लाम में विश्वास करने वाले मुसलमान अपने परमात्मा को खुदा कहते हैं। राम और खुदा घट-घट में व्याप्त हैं)

गोरखनाथ ने हिंदुओं और मुसलमानों को प्रेम से रहने और धर्म ग्रन्थों में लिखी बातों को रटने के बजाय उसे जीवन में उतारने को कहा-

नाथ कहता सब जग नाथ्या, गोरख कहता गोई कलमा का गुर महंमद होता, पहलै मूवा सोई

('नाथ' मात्र के उच्चारण से कोई बन्धन मुक्त नहीं होता। इसी तरह 'कलमा 'का सिर्फ उच्चारण से काम नहीं चलता। मुहम्मद साहेब ने कलमा में अन्तरजीवन का सूत्र दिया है। आज उनका शरीर नहीं है पर उनका कलमा अमर है जो परमतत्व का प्रकाशक है) उन्होंने धर्म का मर्म समझने पर जोर दिया-

सबदै मारी सबदै जिलाई ऐसा महंमद पीरं ताकै भरमि न भूलौ काजी सो बल नहीं शरीर

(मुहम्मद साहब ने जो उपदेश दिया है, जो कहा है उससे आत्मा को शक्ति मिलती है। हे काजी ! उनके कही बातों को सही अर्थां मेंें लो और भ्रम न उत्पन्न करों नहीं तो तुम्हारी बातों में बल खत्म हो जाएगा।)

एक और सबदी में उन्होंने यही बात पंडितों के लिए इस तरह से कही -

पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा, किथ किश कहा कीन्ह बढि बढि बढि बह् घट गया पार ब्रहम नहीं चीन्ह

(शास्त्र पढ़ते-पढते और कहते-कहते कितने मर गए लेकिन उसका मर्म नहीं समझ सके इसलिए उनका परब्रहम से साक्षात्कार भी नहीं हो पाया)

गुरू गोरखनाथ ने अपने वक्त में हिंदूओं और मुसलमानों को आडम्बरों से बचने और धर्म के मूल तत्व को समझने की बात कही-

काजी मुल्ला कुरांण लगाया, ब्रहम लगाया बेदं कापड़ी सन्यासी तीरथ भ्रमाया, न पाया नृबांण पद का भेवं

(काजी और मुल्ला कुरान को सब कुछ मानते हैं। ब्राहण वेद को सब कुछ मानते है। कापड़ी (गंगोत्री से गंगा लेकर चलने वाले तीर्थ यात्री) तीर्थ यात्रा को महत्व देते हैं। गुरू गोरखनाथ का मत है कि इनमें से किसी ने परमत्व का रहस्य नहीं समझा परमपद का निर्वाण मात्र पुस्तक पढ़ने या तीर्थ भ्रमण से नहीं होता। यह साधना से होता है)

गोरखनाथ ने कहनी-करनी में एकता की बात की। उन्होंने साफ कहा कि कोरा उपदेश किसी काम का नहीं है जब तक उसे जीवन में उतारा न जाय। उन्होंने दोहरे आचारण वालों की खूब मजम्मत की है।

कहिण सुहेली रहिण दुहेली , कहिण रहिण बिन थोथी पढ्या गुंण्या सूबा बिलाई खाया, पंडित के हाथि रई गई पोथी

(कोरा उपदेश देना या ज्ञान की बात करना आसान है। उसे जीवन में उतारना किठन है। यदि कहनी के अनुरूप करनी नहीं है तो वह सिर्फ थोथी बात है। यह ऐसे ही है जैसे पिंजड़े में बंद तोता बहुत ज्ञान की बात करता है लेकिन पिंजड़ा खुलते ही ज्ञान का उपयोग जीवन में न करने के कारण बिल्ली का शिकार हो जाता है। उसी तरह पंडित के हाथ में ज्ञान की पोथी है, वह उसका उच्चारण करता रहता है लेकिन जीवन में उसका कोई उपयोग नहीं करता) कहिंग सुहेली रहिंग दुहेली, बिन खाया गुड़ मीठा खाई हींग कपूर बषाणें, गोरख कहे सब झूठा

(जिनके जीवन में कथनी-करनी की संगति नहीं है, वे ऐसे ही हैं जैसे कोई बिना गुड़ खाए उसके स्वाद की बखान करता है और हींग खाने वाला कपूर के स्वाद की बात करता है)

गोरखनाथ को शब्दों की सत्ता पर जबर्दस्त विश्वास था। वह उसे तेज तलवार कहते हैं तो हमारे अज्ञान, भ्रम को को काट देता है।

सबद हमारा षरतर षांडा, रहणि हमारी सांची लेखे लिखी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची

(मैने शब्द जो तेज तलवार की भांति है, उससे अपने भीतर के अंधकार को काट दिया है। मेरी कथनी और करनी में संगति है। इसी का मैने पाठ किया है और इसे ही मै जीता हूं। मैने न कुछ लिखा है न उसे किताब में संग्रहीत किया है)

एक और सबदी में उन्होंने शब्द कर्म के प्रभाव का बखान किया है -

सबदिहं ताला सबदिहं कुंजी, सबदिहं सबद जगाया सबदिहं सबद सूं परचा हुआ, सबदिहं सबद समाया।

गोरखनाथ ने योगियों और सामान्य जन को संयमित रहने, वाद-विवाद से दूर रहने और समझ-बूझ कर काम करने की सलाह दी। उन्होंने कहा-

नाथ कहै तुम आपा राखौ हठ करि वाद न करणां यह ज्ग है कांटेे की बाड़ी देखि देखि पग धरणां उनकी अधिकतर सबदियों में लोगों और विशेष कर योगी के जीवन के लिए आदर्श निर्धारित है -

जोगी सो जो राखे जोग, जिभ्या यंद्री न करै भोग अंजन छोड़ निरंजन रहे, ताकू गोरख जोगी कहे

(जो व्यक्ति इन्द्रियों की तुप्ति के लिए भोग नहीं करता, माया से मुक्त हो गया है और जो हमेशा परमपद मे जोग लगाए रहता है, गोरखनाथ उसे ही योगी कहते हैं)

हबिक न बोलिबा, ठबिक न चालिबा, धीरे धरिबा पांव गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भरत गोरख रांव

(ऐसे गुजर जाओ की किसी को पता नहीं चले। अनुपस्थित रहो। सबकी आंखों के केन्द्र में न रहो। ऐसे गुजरों कि कोई देखें नहीं। गर्व न करो, सहज रहो, ध्यान से बोलों)

गोरखनाथ ने जीवन में आंनद से रहने की शिक्षा दी। उनका कहना था कि किसी भी धर्म का यह आदेश नहीं है कि दुखी होकर रहो। हंसते-खेलते-गाते ह्ए जीवन जीएं, यही ब्रहमज्ञान की अभिव्यक्ति है।

हिसबा खेलिबा रहिबा रंग काम क्रोध न करिबा संग हिसबा खेलिबा गाइबा गीत दिढ करि राखि अपना चीत हिसबा खेलिबा धरिबा ध्यानं अहिनिसि कथिबा ब्रह्म गियांन हसै-खेलै न करै मन भंग ते निहचल सदा नाथ के संग

योगी ईद नहीं मनाने की बात कर रहे हैं लेकिन नाथ योगियों के बारे में एक मुसलमान कवि ने बहुत ही सुन्दर कविता लिखी हैं। यह कवि हैे मुगल सम्राट जहांगीर के समय के उस्मान। उनके द्वार 1613 में यानि चार सौ साल पहले लिखी 'चित्रावली 'में गोरखपुर और नाथ योगियों का वर्णन देखिए-

आगे गोरखपुर भल देसू , निबहै सोई जो गोरख भेसू जहं तहं मढ़ी गुफा बहु अहही जोगी , जती सनासी रहहीं चारिहूं ओर जाप नित होई, चरचा आन करै निहं कोई कोउ दुहुं दिसि डोले बिकरारा, कोउ बैठि रह आसन मारा काहू पंच अगिनि तप सारा, कोउ लटकई रूखन डारा कोउ बैठि धूम तन डाढे, कोउ विपरीत रहे होई ठाढे फल उठि खाहिं पियहिं चिल पानी, जां चाहि एक विधाता दानी परब सबद गुरू देई तहं, जेहि चेला सिर भाग नित जेहिं ड्योढी लावई, रहे सो ड्योढी लाग

(गोरखपुर एक भला देश है। वहां गोरखनाथ का वेश धारण करने वाले नाथपंथियों का निर्वाह होता है। वहां जगह-जगह मठ और गुफाएं हैं जहां योगी, जती व सन्यासी निवास करते हैं। चारो ओर जाप होता है और कोई चर्चा नहीं होती। कोई इधर-उधर डोलता है तो कोई आसन लगाकर ध्यान में मग्न है। कोई पंचाग्नि तापता है तो कोई पेड़ की डाली पर उल्टा लटका है। कोई सिर नीचे पैर उपर कर तपस्या कर रहा है तो कोई धूप में अपने तन को जला रहा है। भूख लगने पर तपस्वी फल खा लेते हैं, प्यास लगने पर पानी पी लेते हैं लेकिन कोई किसी से याचना नहीं करता। सब ईश्वर से ही याचना करते हैं। गुरू, शिष्यों को ब्रहम का ज्ञान कराता है। कोई भाग्यशाली शिष्य ही इस ज्ञान को ग्रहण कर पाता है। जो नित्य गुरू की ड्योढ़ी पर पड़ा रहता है वही ब्रहम ज्ञान पाता है)

नाथ सम्प्रदाय और गोरखबानी के दर्शन को यदि कोई सच्चे अर्थ में ग्रहण करता है तो वह होली-ईद, हिन्दू-मुसलमान में भेद न करेगा न करने की बात कहेगा चाहे वह कोई सामान्य व्यक्ति हो या नाथ सम्प्रदाय का योगी।

एक है 'फिरोज गाँधी कानून', जिसने 60 साल पहले तानाशाही का खतरा भांप लिया था!

राजेश वर्मा

"संसदीय लोकतंत्र और शासन व्यवस्था की सफलता का एकमात्र पैमाना जनाकांक्षा का सम्मान है और इसके लिये जरूरी है कि जनता को सदनों के कामकाज, उसके कार्य-व्यापार के बारे में जानने का अधिकार मिले। यह आपका और हमारा, हम सांसदों का नहीं, जनता का सदन है… हम यहां हैं, हम बोलते, बहस और तमाम विधायी कार्य करते हैं तो इसलिये कि लोगों ने हमें प्रतिनिधित्व की जिम्मेदारी दी है, उसकी तरफ से यह सब करने का हक दिया है। इसलिये लोगों को यह जानने का अधिकार है कि उसके निर्वाचित प्रतिनिधि क्या कह और क्या कर रहे हैं। इस अधिकार के रास्ते में अगर कोई बाधा है तो उसे दूर किया जाना चाहिये। लोकतंत्र कितना सफल या असफल है, इसका आकलन इस तथ्य से होगा कि हम सरकार को जनता की नजरों के सामने पूरी पारदर्शित से काम करने के लिये किस हद तक मजबूर कर सके हैं।"

यह 60-62 साल पहले की एक आवाज है, लोकतंत्र और पत्रकारिता के हक में संसद से उठती एक आवाज। फिरोज गांधी ने संसदीय कार्यवाहियों के प्रकाशन के अधिकार का अपना गैर-सरकारी विधेयक पेश करते हुये लोकसभा में शायद अप्रैल 1956 में यह टिप्पणी की थी।

फिरोज के जीवनीकार, स्वीडिश पत्रकार एवं लेखक बर्टिल फाॅक ने 'फिरोजः द फाॅरगाॅटेन हीरों' में लिखा है कि जीवन के अंतिम वर्षों में वह अपने परिवार को लेकर कई तरह के अवसाद में घिर गये थे। आश्चर्य होता है कि इस दौर में भी संसद में न केवल उनकी सिक्रयता बनी रही थी, बिल्क संसदीय कामकाज के समाचार संकलन की इजाजत सुनिश्चित करने का उनका गैर-सरकारी विधेयक भी 4 मई, 1956 को पारित हुआ, उनकी मृत्यु से केवल चार साल पहले। आश्चर्य इसिलये कि 1990 के आसपास से संसद की कार्यवाहियों की साक्षी रही पत्रकारों की हमारी पीढी ने प्रश्नकाल को धीरे-धीरे रस्म अदायगी में बदलते देखा है। विरोध-प्रदर्शनों-हंगामों ने इतनी जगह घेर ली है कि तारांकित/ मौखिक प्रश्नों के लिए अवकाश खत्म होता जा रहा है। रिकार्डों से इसिकी तस्दीक की जा सकती है। फिर प्रश्नों के मौखिक उत्तरों में ही नहीं, लिखित उत्तर तक में बताने से ज्यादा छिपाने की सरकार की रणनीतियां साफ हैं और प्रश्न पूछने को लेकर स्वयं सदस्यों में भी एक तरह की बेरूखी है। 2009 में लोकसभा में स्वीकृत और सूचित 1100 सवालों में से समयाभाव के कारण केवल 266 ही लिये जा सके थे और संबद्ध सदस्यों की गैर-मौजूदगी के कारण सरकार को केवल 209 का ही मौखिक उत्तर देना पड़ा था। यद्यपि बाद में राज्यसभा ने संबद्ध सदस्य की अनुपस्थित में भी स्वीकृत तारांकित सवालों के जवाब देना अनिवार्य कर दिया।

यह स्थिति तब है, जब 1957 में प्रश्नकाल में ही फिरोज गांधी के एक सवाल से मुन्द्रा घोटाले का पर्दाफाश हुआ था और देश में जीवन बीमा के कारोबार का राष्ट्रीयकरण इसी की परिणित थी। आजाद भारत के उस पहले वितीय घोटाले में आखिरकार तत्कालीन वित्त मंत्री टी.टी. कृष्णामाचारी को इस्तीफा भी देना पड़ा था। लेकिन प्रश्न पूछने और जवाब देने के समय का संकुचन एक वृहतर गिरावट का हिस्सा है। पत्रकारों की हमारी पीढी ने साल-दर-साल संसद की बैठकों के दिन कम होते देखा है, बैठकों के

वास्तविक समय की बर्बादी देखी है, सदस्यों की गैर-हाजिरियां देखी हैं, कोरम के अभाव पर बार-बार चीखते कोरम-बेल सुने हैं, तू-तू मैं-मैं देखे हैं, हंगामे-वाकआउट देखे हैं। 'पी.आर.एस. लेजीस्लेटिव रिसर्च' के एक अध्ययन के अनुसार आजादी के बाद पहले दशक में हर साल संसद की औसतन 125 बैठकें हो रही थी और केवल 60 साल में इनकी संख्या करीब आधी या उससे भी कम रह गयी हैं। शायद दोनों सदनों की सबसे कम, 23 बैठकों का रिकार्ड वर्ष 2011 के नाम दर्ज है और समय की बर्बादी के लिहाज से अव्वल होने का कीर्तिमान है 2010 के नाम, जब शीतसत्र में तो लोकसभा कुल साढ़े सात घंटे ही बैठ सकी और राज्यसभा इससे भी केवल एक तिहाई। 2012 में जरूर दोनों सदन 35-35 दिन बैठे, लेकिन यह भी विधायी काम के बोझ के सामने इतना कम था कि बजट प्रस्तावों का 92 प्रतिशत बिना बहस के पारित कराना पड़ा था।

दोनों सदनों में अनुपस्थिति का आलम यह है कि यूपीए-1 के शासनकाल में 14वीं लोकसभा के 11वें और 12वें सत्रों में तीन-चौथायी सदस्यों ने 11 से 15 बैठकों में ही भाग लिया और 15वीं लोकसभा में भी 545 सदस्यों में केवल सात ऐसे थे, जिन्होंने निचले सदन की हर बैठक में शिरकत की और बैठकों में भाग लेने की बेरुखी ऐसी कि सदस्य तो सदस्य, मंत्री और प्रधानमंत्री तक संसद का सत्र चालू रहते, विदेश यात्राएं करने में ग्रेज नहीं करते।

पिछले प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह 2009 के 21 दिवसीय शीत सत्र के दौरान 13 दिन विदेश यात्राओं पर रहे और मौजूदा प्रधानसेवक पर तो आरोप है कि राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव पर चर्चा का उत्तर देने की अनिवार्यता को छोड़ दे तो उन्होंने विभिन्न देशों की पार्लियामेंट को जितनी बार संबोधित किया है, उतनी बार तो वह संसद के दोनों सदनों में भी नहीं बोले हैं।

तो यह नया समय है। हम 1956 से बहुत दूर निकल आये हैं। उनका 'पार्लियामेंट्री प्रोसीडिंग्स प्रोटेक्शन आॅफ पब्लिकेशन एक्ट' आजादी के बाद की तीन चौथाई सदी में पारित केवल 14 गैर-सरकारी विधेयकों में से एक था। फिरोज के देहावसान के छह साल बाद इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं थीं और प्रधानमंत्री बनने के करीब दस साल बाद उनके अधिनायकवाद का पहला शिकार इत्तफाकन यही कानून बना। बाद में, 1977 में आपातकाल और इंदिरा गांधी की विदाई के साथ इस कानून की भी वापसी हुई, थोडे संशोधनों के साथ।

लिहाजा, कार्यवाहियों के कवरेज का कानूनी संरक्षण मौजूद है। इस नये समय में लोकसभा और राज्यसभा की कार्यवाहियों के सीधे प्रसारण के लिए 24 घंटे के चैनल भी हैं। दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में राष्ट्रपित के संबोधन के 1989 में दूरदर्शन से प्रसारण की शुरुआत, 1992 में रेल और आम बजट का सीधा प्रसारण शुरू होने, 1994 में दूरदर्शन और आकाशवाणी से हर दूसरे हफ्ते लोकसभा और राज्यसभा से प्रश्नकाल का भी सीधा प्रसारण और 2004 में प्रसार भारती के तत्वाधान में दोनों सदनों की कार्यवाहियों के सीधे प्रसारण के लिये दो उपग्रह चैनल शुरू करने के रास्ते हम यहां तक आ पहुंचे हैं। पर इन सीधे प्रसारणों ने गलेबाजी, नाटकीयता और दिखने-पहचाने जाने की योग्यता देने की संभावना वाले तमाम करतबों को कार्यवाही का अनिवार्य अंग बना दिया। संसदीय बहसों-विमर्शों में शिरकत और उसके लिये तैयारी के मुकाबले चिल्लाने, नारेबाजी, अध्यक्ष के आसन के सामने जमावड़ा लगाने, धरने पर बैठ

जाने की युक्तियां अपनाकर सीधे अपने निर्वाचन क्षेत्र और खास अपने मतदाता की नजरों में आने का प्रलोभन आसान भी है, दुर्निवार भी।

यह तकनीक का करतब है, इंसानी करतब यह कि इस नये समय में जब कोई कठुआ घटता है या कोई उन्नाव तो मुख्य अभियुक्त पूरी आश्वस्ति से सीबीआई जांच की मांग करने लगते हैं, कोई मंत्री, कोई विधायक उनके पक्ष में धरने-जुलूस शुरू कर देता है, वकीलों का कोई बार एसोसिएशन अभियुक्त के खिलाफ आरोपपत्र दाखिल नहीं करने देने के संकल्प के साथ बगावत पर उतर आता है और केन्द्र और राज्य की सत्ता कानून के तहत कार्रवाई नहीं करती, बस कई दिन की चुप्पी के बाद उमइते-घुमइते जनाक्रोश पर किसी नये कानून का या बलात्कारियों के लिये फांसी जैसे किसी नये प्रावधान का पानी डाल देती है।

बर्टिल फाॅक कहते हैं कि फिरोज ने 1955 में ही अधिनायकत्व के जोखिम को भांप लिया था और इंदिरा गांधी को इसके प्रलोभनों से आगाह भी किया था। आपातकाल में उनकी आशंका सही भी साबित हुयी। पर इस फिरोज गांधी एक्ट को निरस्त करने की दरकार नहीं होगी। यह कानून की किताब की शोभा बढ़ाता रहेगा, केवल इसे छुये बिना इसके दायें-बायें से निकल जाने की पगडंडी बना ली जायेगी। इसलिये आइये! अंत में एक बार फिर पहले पैरे के आखिरी वाक्य से ही शुरू करते हैं, "लोकतंत्र कितना सफल या असफल है, इसका आकलन इस तथ्य से होगा कि हम सरकार को जनता की नजरों के सामने पूरी पारदर्शिता से काम करने के लिये किस हद तक मजबूर कर सके हैं। संसद के पूरे तंत्र का मकसद यही है।"

लोकसभा टीवी की पहली वर्षगाँठ के मौके पर 20 अगस्त 2007 को तत्कालीन उपराष्ट्रपति और राज्यसभा के अध्यक्ष ने जब इसे 'दर्शक दीर्घा का प्रौद्योगिक विस्तार' कहा था, तब शायद वह भी पारदर्शिता के इसी संकल्प की प्रतिध्वनि थी। विस्मरण केवल यह था कि दर्शक दीर्घा के इस प्रौद्योगिक विस्तार में दर्शक की आंख की जगह कैमरे की आंख फिट कर दी गयी होती है, जिन्हें पीठासीन अधिकारियों के इशारों पर देखना-सुनना होता है। और बजट सत्र में अविश्वास प्रस्ताव पर कैमरों के खेल से लेकर अवमानना प्रस्ताव की नोटिस खारिज किये जाने तक पीठासीन अधिकारियों के सलूक से इतना तो साफ है कि अंग्रजी में जिसे 'पार्टिजन' कहते हैं या हिन्दी में जिसे 'पार्टी-जन', पीठ से इनके पार जाने की उम्मीदों के दिन तो लद ही गये हैं।

उसके प्रेम ने मुझे अवसाद के गहरे दलदल से उबार दिया!

स्टीफेन हाकिंग से बातचीत

समय का संक्षिप्त इतिहास, 'अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' जैसी लोकप्रिय प्रसिद्ध किताब से स्टीफन हॉकिंग द्निया भर में एक जाना पहचाना नाम कई साल पहले बन गए थे. 1993 में दूसरी किताब 'ब्लैक होल्स एंड बेबी यूनिवर्सेस' के बाद 2001 में उनकी किताब आयी 'द यूनिवर्स इन अ नटशैल.' और इसने भी तहलका मचा दिया. रिकॉर्ड बिक्री है. आठ जनवरी 1942 को जन्मे हॉकिंग युवा दिनों में एक घातक बीमारी की चपेट में आकर शारीरिक रूप से अपाहिज और बोलने या चलने फिरने में असमर्थ हो गये थे. उनके लिए एक ख़ास किस्म की चेयर तैयार की गयी जिस पर कई अत्याध्निक उपकरणों के साथ कम्प्यूटर लगा था. हॉकिंग के कंप्यूटर को एक स्पीच सिंथेसाइज़र प्रणाली से जोड़ा गया था. हॉकिंग हाथ पर बंधे एक स्विच को संचालित कर कंप्यूटर स्क्रीन पर अंकित शब्दों के मेनू से एक एक कर शब्द चुनते (सिर या आंखों की मूवमेंट से भी शब्दों को चुना जा सकता है.) जब ये काम पूरा हो जाता है और हॉकिंग जो कहना चाहते वो निर्मित कर लेते तब वो उसे स्पीच सिंथेसाइज़र को भेज देते. वहां से फिर इस निराले विज्ञानी के विचार गूंजते थे. इस तरह एक अत्यंत घातक बीमारी एएलएस(amyotrophic lateral sclerosis-जिसे मल्टीपल स्कलेरोसिस यानी एमएस या मोटर न्यूरॉन डिज़ीज़) का मरीज़ और फिर न्यूमोनिया के एक घातक हमले के इलाज के दौरान आवाज़ गंवा चुका शख्स, चिकित्सा विज्ञान के दंभ को चिढ़ाता सबसे ज़्यादा चमत्कृत कर देने वाले विज्ञान यानी कॉस्मोलोजी की गृत्थियां स्लझाने में व्यस्त रहा. ये ज़िद इतनी इस्पाती थी कि डॉक्टरों के खारिज़ कर दिए जाने के बावजूद हॉकिंग न सिर्फ अच्छे भले हैं बल्कि उनके तीन बच्चे भी हैं.

बीबीसी रेडियो 4 के कार्यक्रम 'डेजर्ट आईलेंड डिस्क्स' का प्रसारण 1942 में शुरू हुआ था. और ये रेडियो पर सबसे लंबी अविध तक बजने वाला रिकार्ड कार्यक्रम है. गिनीज़ बुक मे इसका नाम दर्ज है. अब इसकी स्थिति ब्रिटेन में राष्ट्रीय संस्थान जैसी है. मशहूर रेडियो प्रस्तोता, लेखक उपन्यासकार और नाटककार रॉय प्लोमले ने इसकी संकल्पना तैयार की थी. प्रोग्राम के सबसे पहले प्रेजेंटर वही थे. 1985 में प्लोमले के निधन के बाद माइकल पार्किन्सन ने इसे पेश किया. 1988 में ये ज़िम्मेदारी संभाली एक और मशहूर रेडियो पत्रकार स्यु लावले ने. वो 18 साल तक इसे पेश करती रहीं. स्टीफन हॉकिंग का प्रस्तुत साक्षात्कार उन्हीं का लिया हुआ है. अगस्त 2006 से उनकी जगह ली है युवा पत्रकार क्रिस्टी यंग ने.

कार्यक्रम के मेहमानों का दायरा बहुत फैला हुआ रहा है. प्रोग्राम के तहत कई लेखकों, कलाकारों संगीतकारों फिल्म अभिनेताओं निर्देशकों खेल की हस्तियों कामेडियनों रसोईयों बागवानो शिक्षकों नर्तकों नेताओं शाही घरानों के लोगों कार्टूनिस्टों और वैज्ञानिकों के साक्षात्कार लिए जा चुके हैं. इंटरव्यू में बातों बातों में ऐसा समां बांधा जाता है कहना चाहिए कि ऐसा निराला टॉकिंग एंबिएंस क्रिएट किया जाता है कि वो एक रेडियो स्टूडियो नहीं बल्कि साक्षात्कार के लिए बुलाए गए मेहमान के ख़्यालों की कोई जगह है. भौतिकी की हाइपरस्पेस जैसी कोई जगह. मेहमानों को पात्रों के रूप में लाया जाता है और उनसे पूछा जाता है कि अगर उन्हें किसी निर्जन द्वीप में अकेला छोड़ दिया जाए तो अपने साथ वे संगीत के कौन से आठ रिकॉर्डस ले जाना चाहेंगे. काल्पनिक रूप से एक ऐसी चीज़ भी विलासिता(लक्ज़री) के लिए ले जाने की छूट है जिसका जीवित वस्तु जगत से कोई संबंध न हो. बड़ी मात्रा में शैम्पेन ले जाने की छूट भले ही हो !(ये भी काल्पनिक). साथ ले जाने के लिए उनकी पसंद की कोई किताब है(ये मान लिया गया है कि एक धार्मिक पुस्तक-कुरान या बाइबल या उसी स्तर का अन्य ग्रंथ-वहां पहले से है और इनके अलावा शेक्सिपयर का समूचा काम तो है ही) ये कल्पना भी कर ली जाती है कि संगीत सुनने की व्यवस्था वहां उपलब्ध है. ये भी बताते चलें कि पिछले साठ साल में आए मेहमानों की पसंद के संगीत में बीटोफेन की नवीं सिंफनी का अंतिम चरण 'द ओड ऑफ ज्वॉय' रहा है.

जब ये कार्यक्रम पहले पहल शुरू हुआ था तो उन दिनों इसका परिचय देते हुए शुरूआत में कहा जाता था, मान लें कि वहां एक ग्रामोफोन है और उसे चलाने के लिए अनगिनत मात्रा में सुईया उपलब्ध हैं. अब, सौर ऊर्जा से चालित एक सीडी प्लेयर की कल्पना कर ली गयी है कि उसके ज़रिए कार्यक्रम के किरदार यानी मेहमान संगीत सुन सकेंगे. ये प्रोग्राम, साप्ताहिक है और मेहमानों की पसंद की सीडी साक्षात्कार के दरम्यान चलायी जाती है. प्रोग्राम की मियाद आमतौर पर चालीस मिनट रहती है. लेकिन स्टीफन हॉकिंग का ये इंटरव्यू अपवाद रहा जो इस अविध से ज़्यादा देर तक रिकॉर्ड किया गया. ये इंटरव्यू 1992 के क्रिसमस दिवस पर प्रसारित हुआ था.

कई मामलों में स्टीफन आप निर्जन द्वीप के अकेलेपन को पहले से ही समझते हैं, सामान्य भौतिक जीवन से कटे ह्ए और संचार के प्राकृतिक साधनों से वंचित, आपके लिए ये कितना अकेलापन है?

मैं नहीं समझता कि मैं सामान्य ज़िंदगी से कटा हुआ हूं. और मैं नहीं सोचता कि मेरे आसपास के लोग कहेंगे कि मैं ऐसा था. मैं खुद को अपाहिज व्यक्ति नहीं मानता- सिर्फ इतना कि मेरी मोटर न्यरोन्स में कुछ गड़बड़ियां हैं, समझिए कि मैं कलर ब्लाइंड हूं. मुझे लगता है कि मेरी ज़िंदगी स्वाभाविक नहीं कही जा सकती लेकिन आत्मिक तौर पर मैं महसूस करता हूं कि ये सामान्य है.

और तो और इस कार्यक्रम के अन्य किरदारों से अलग आप खुद को पहले ही साबित कर चुके हैं कि आप मानसिक और बौद्धिक तौर पर आत्मनिर्भर हैं, कि खुद को व्यस्त रखने के लिए आपके पास कई सिद्धांत और प्रेरणा हैं.

मुझे लगता है कि मैं कुदरती तौर पर थोड़ा अंतर्मुखी हूं और संचार में मेरी मुश्किलों ने मुझे खुद पर निर्भर रहने को बाध्य किया है. लेकिन मैं छुटपन में बहुत बातूनी था. खुद को जागृत करने के लिए मुझे अन्य लोगों से बातचीत की ज़रूरत रहती है. अपने विचार दूसरों को समझाने से मुझे अपने काम में बड़ी मदद मिलती है. भले ही उनसे मुझे कोई सुझाव नहीं मिलते लेकिन दूसरों को समझाने के लिए मुझे जब अपने विचारों को व्यवस्थित करना होता है तो इससे कई बार मुझे आगे का रास्ता दिख जाता है.

लेकिन स्टीफन भावनात्मक भरपाई का क्या ? कुशाग्र भौतिकविद् को भी ये जानने के लिए दूसरों की ज़रूरत पड़ती है.

भौतिकी यूं तो बहुत अच्छी है लेकिन ये पूरी तरह से ठंडी है. मैं सिर्फ भौतिकी से अपनी ज़िंदगी नहीं चला सकता था. दूसरों की तरह, मुझे भी उष्णता, प्रेम और निष्ठा की दरकार है. एक बार फिर मैं बहुत भाग्यशाली हूं, मेरी जैसी अयोग्यताओं वाले दूसरे लोगों की अपेक्षा कहीं ज़्यादा भाग्यशाली कि मुझे बड़े पैमाने पर प्यार और अपनापन नसीब हुआ है. इस माने में संगीत भी मेरे लिए बहुत अहम है.

ये बताएं कि कौन सी चीज़ से आपको ज़्यादा खुशी मिलती है. भौतिकी या संगीत ?

मुझे कहना पड़ेगा कि भौतिकी में जब मैं कुछ न कुछ खोजता और हासिल करता रहता हूं तो उससे मुझे जितनी खुशी मिलती है उतनी संगीत से नहीं. लेकिन इस तरह की कामयाब बातें किसी के करियर में च्निंदा ही होती हैं., जबिक डिस्क तो जब चाहे बजायी जा सकती है.

और पहला रिकॉर्ड जो आप अपने निर्जन द्वीप पर बजाना चाहते हैं ?.

पूलांग्क (फ्रांसीसी संगीत रचनाकार) का 'ग्लोरिया', मैंने पहली बार इसे कोलोराडो के एस्पन में पिछली गर्मियों में सुना था. एस्पन यूं तो स्काई रिसार्ट है लेकिन गर्मियों में वहां भौतिकी पर बैठकें होती हैं. फिजिक्स सेंटर के साथ वाला दरवाजा एक विशाल टेंट में खुलता है जहां संगीत महोत्सव किया जाता है. आप यहां जब इस बात पर सिर खपा रहे होते हैं कि ब्लैक होल के ग़ायब होने के बाद क्या होता है उसी दौरान आप रिहर्सल की आवाज़ें सुन सकते हैं. ये आदर्श स्थिति है. इसमें मेरी दो प्रमुख खुशियां मिल जाती हैं, भौतिकी और संगीत. अगर ये दोनों मुझे मेरे वीरान टापू पर मुहैया करा दी जाएं तो मैं यहां से निकाला जाना नहीं चाहूंगा. माने तब तक जब तक कि मैं सैद्धांतिक भौतिकी में ऐसी कोई खोज न कर लूं जो दुनिया को बताने लायक हो. इ-मेल से मुझे मेरे फिजिक्स के पर्च मिल जाएं इसके लिए शायद मुझे टापू पर एक सैटेलाइट डिश तो मुश्किल मिलेगी, ये नियमों के ख़िलाफ़ होगा.

शारीरिक कमियों को रेडियो छिपा लेता है लेकिन इस मौके पर ये तो कुछ और छिपा रहा है. स्टीफन, सात साल पहले आपकी आवाज़ चली गयी, क्या आप बताएंगे कि हुआ क्या था?

मैं जेनेवा में था. 1985 की गर्मियों की बात है. वैगनर का 'रिंग' ऑपेरा देखने के लिए मैं जर्मनी के बेरूश जाने की तैयारी कर रहा था कि तभी न्यूमोनिया ने मुझे जकड़ लिया, मुझे फौरन अस्पताल ले जाया गया. जेनेवा के अस्पताल वालों ने मेरी पत्नी को सलाह दी कि लाइफ सपोर्ट मशीन को चालू रखना बेकार है. लेकिन वो सुनने को राज़ी नहीं हुई. मुझे विमान से कैंब्रिज के एडिनब्रूक्स अस्पताल लाया गया, जहां रोजर ग्रे नाम के एक सर्जन ने मेरे गले का ऑप्रेशन (ट्रैकियोटॉमी) किया. उस ऑप्रेशन से मेरी ज़िंदगी तो बच गयी लेकिन मेरी आवाज़ जाती रही.

लेकिन उस दौरान तो आपकी आवाज़ भर्राने लगी थी और समझ नहीं आता था कि आप क्या बोल रहे हैं. है न ?!. बोलने की क्षमता तो लगता है आखिरकार आपसे यूं भी बिछ्ड़ने वाली थी, क्यों ?

भले ही मेरी आवाज़ डूब रही थी और उसे समझना मुश्किल था तो भी मेरे नज़दीक के लोग मुझे समझ लेते थे. मैं दुभाषिए की मदद से सेमिनार में बोलता था और मैं वैज्ञानिक पर्चे डिक्टेट कर सकता था. लेकिन ऑप्रेशन के बाद के कुछ समय तक तो मैं बरबाद हो गया था. मुझे महसूस हुआ कि अगर मुझे मेरी आवाज वापस न मिली तो जीना बेकार है.

कैलिफोर्निया के एक कंप्यूटर विशेषज्ञ ने आपकी व्यथा के बारे में पढ़ा और आपको एक आवाज़ भेज दी. ये कैसे काम करती है?.

उसका नाम था वॉल्ट वोल्तोज़. उसकी सास की हालत भी मेरी तरह थी, उसके लिए उसने बातचीत में मदद के लिए एक कंप्यूटर प्रोग्राम विकसित किया था. करसर स्क्रीन पर घूमता रहता है. अपनी पसंद के विकल्प पर इसे लाते ही एक स्विच चलाना पड़ता है, सिर या आंखो को घुमाकर या जैसे मेरे मामले में, हाथ से. इस तरह स्क्रीन के निचले हिस्से में अंकित शब्दों को चुना जा सकता है. जो आप कहना चाहते हैं एकबारगी उसे निर्मित कर लेने के बाद उसे एक स्पीच सिंथेसाइज़र को भेज दिया जाता है या डिस्क पर सेव कर लिया जाता है.

लेकिन ये तो एक धीमी प्रक्रिया है.

हां ये धीमा तो है, अंदाजन ये रफ़्तार सामान्य बोलचाल की रफ़्तार का दसवां हिस्सा होती है. लेकिन स्पीच सिंथेसाइज़र स्पष्ट आवाज़ निकालता है, मेरी पहले की आवाज़ से ज्यादा स्पष्ट. ब्रिटेन के लोग इसका लहजा अमेरिकी बताते हैं लेकिन अमेरिकी कहते हैं ये स्कैनडिनैवियाई या आयरिश है. पर ये जो भी हो, सभी इसे समझ लेते हैं. मेरे बड़े बच्चे मेरी आवाज़ के ख़राब होने के साथ उसी मौलिक लहजे को समझने लगे थे लेकिन मेरा सबसे छोटा बेटा जो मेरे ऑप्रेशन के समय महज़ छह साल का था उससे पहले मुझे कभी नहीं समझ पाता था. अब उसे कोई दिक्कत नहीं है. मेरे लिए इस बात के बड़े माने है.

इसके माने ये भी हैं कि आपके पास किसी भी इटरव्यू लेने वाले के सवालों को भली भांति परखने का बेहतर समय रहता है और आपको जवाब तभी देने की ज़रूरत है जब आप ठीक से तैयार हो जाएं, क्या ऐसा नहीं है.

मोटे तौर पर इस तरह के रिकॉर्डेड कार्यक्रमों में सवालों पर पहले से ग़ौर कर लिए जाने से मदद मिलती है, इससे होता ये भी है कि मैं रिकार्डिंग टेप के कई घंटे इस्तेमाल नहीं करता. एक तरह से इससे मेरे पास ज़्यादा नियंत्रण रहता है, लेकिन मैं वास्तव में अनायास सवालों के जवाब देना पसंद करता हूं. सेमिनारों और लेक्चरों के बाद मैं यही करता हूं.

लेकिन जैसा कि आपने कहा, इस प्रक्रिया का मतलब आपके पास नियंत्रण रहता है और मुझे मालूम है कि ये बात आपके लिए काफी अहम है. आपका परिवार और आपके दोस्त कभी कभार आपको अड़ियल या बॉसपना झाड़ने वाला शख्स कहते हैं. इस पर क्या आप क्छ कहना चाहेंगे कि आप ऐसे नहीं हैं.

जिस किसी में भी सोचने की क्षमता है उसे कभी कभार अड़ियल या ज़िद्दी कहा ही जाता है. मैं ये कहूंगा कि मैं दढ़ निश्चयी हूं. अगर मैं साफतौर पर इरादों का पक्का न होता तो आज यहां न होता.

क्या आप हमेशा से ऐसे ही थे.

मैं अपने जीवन पर उसी स्तर का नियंत्रण चाहता हूं जैसे अन्य लोगों का होता है. आमतौर पर होता ये है कि विकलांगों की ज़िंदगी दूसरे लोग चलाते हैं. कोई भी शारीरिक रूप से समर्थ व्यक्ति ये नहीं चाहेगा.

चलिए आपका दूसरा रिकॉर्ड चलाया जाए

ब्राहमस का वॉयिलिन कन्सर्ट, ये पहला एलपी था जिसे मैने खरीदा. 1957 की बात है जब 33 आरपीएम के रिकॉर्डस ब्रिटेन में प्रकट हुए ही थे. रिकॉर्ड प्लेयर खरीदना मेरे पिता को फिजूलखर्ची लगता था लेकिन मैंने उन्हें ज़ोर देकर मनाया कि मैं कुछ पार्टस खरीद कर उन्हें असेंबल कर एक प्लेयर का जुगाड़ कर दूंगा. ये बात उन्हें किसी यॉर्कशायर वाले की तरह जंच गयी. एक पुराने 78 ग्रामोफोन के केस में मैने टर्नटेबल और एम्प्लीफायर रख दिए. अगर मैं इसे संभाले रहता तो आज ये बेशकीमती होता. रिकॉर्ड प्लेयर बना लेने के बाद, मुझे उस पर बजाने के लिए कुछ चाहिए था. एक स्कूली दोस्त ने ब्राहमस वॉयिलिन के रिकॉर्ड की सलाह दी. क्योंकि हमारे स्कूली सर्किल में ये वाला किसी के पास नहीं था. मुझे याद है कि इसकी कीमत 35 शैलिंग थी जो उस ज़माने के बहुत ज़्यादा थी, ख़ासकर मेरे लिए. रिकॉर्ड के अब तो काफी ऊंचे दाम हो गए हैं लेकिन वास्तव में ये फिर भी काफी कम कीमतें हैं. जब पहली बार एक दूकान पर मैने ये रिकॉर्ड सुना मुझे लगा कि ये विचित्र आवाज़ थी. और मैं तय नहीं कर पा रहा था कि मुझे ये पसंद है या नहीं. लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि अंदर से मैं महसूस कर रहा था कि ये रिकॉर्ड मुझे पसंद है. कई साल गुज़र जाने के बाद भी लगता है कि मुझे इसकी बहुत ज़रूरत है. मैं अभी मंद गित का श्रूआती हिस्सा प्ले करूगा.

आपके एक पुराने पारिवारिक मित्र ने कहा है कि जब आप लड़के थे आपका परिवार, और मैं अगर कोट करूं, 'बहुत बुद्धिमान बहुत समझदार और बहुत अजीबोगरीब था .' जब आप पीछे मुड़कर देखते हैं तो क्या ये विवरण ठीक लगता है आपको.

मैं ये टिप्पणी तो नहीं करूंगा कि मेरा परिवार बुद्धिमान था या नहीं, लेकिन अपने को हमने कभी अजीबोग़रीब नहीं माना. मुझे लगता है कि सेंट अल्बान्स के रहने जीने के तौर तरीकों की वजह से हम वैसे दिखते होंगे. जब हम वहां रहते थे तो वो जगह ऊबाऊ और भदेस थी.

और आपके पिता ट्रॉपीकल (उष्णकटिबंधीय) देशों में होने वाली बीमारियों के विशेषज्ञ थे.

मेरे पिता ने ट्रॉपिकल मेडेसिन में रिसर्च की थी. नई दवाओं का परीक्षण करने वो कई बार अफ्रीका जाते थे.

तो क्या आपकी मां का आप पर ज़्यादा असर है. वो असर कैसा था..

नहीं, मेरे पिता का मुझ पर ज़्यादा प्रभाव था. मैने उनको अपने मॉडल के रूप में देखा. क्योंकि वो वैज्ञानिक शोधकर्ता थे. मैं सोचता था कि बड़े होने पर वैज्ञानिक शोध करना ही स्वाभाविक बात है. एक अकेला अंतर ये था कि मैं चिकित्सा और जीव विज्ञान की तरफ आकर्षित नहीं हुआ क्योंकि दोनों बहुत अपर्याप्त और विवरणात्मक थे. मैं कुछ ज़्यादा बुनियादी चीज़ चाहता था और भौतिकी में मुझे वो चीज़ मिल गयी.

आपकी मां ने कहा है कि आपमें हमेशा हैरानी का एक तीव्र बोध रहा है. उन्होंने कहा : 'मैं देखती कि तारे उसे खींच लेते थे.' क्या आपको इसकी याद है.

मुझे याद है कि एक बार लंदन में देर रात मैं घर लौट रहा था. उन दिनों पैसे बचाने के लिए आधी रात को सड़कों की बितयां बुझा दी जाती थीं. मैने रात के आकाश को देखा, वैसा मैने पहले कभी नहीं दिखा था. तारों का काफ़िला मेरे सामने से गुज़र रहा था. मेरे वीरान टापू पर कोई स्ट्रीट लाइट नहीं होगी लिहाज़ा मैं तारों को भली भांति देख सकूंगा.

ज़िहर है. आप बचपन में बहुत तेज़ थे. घर पर खेलों में भी आप अपनी बहन के मुकाबले कमतर न थे, लेकिन स्कूल में व्यवहारिक तौर पर आप क्लास में सबसे फिसड्डी रह जाते थे और आपको इसकी परवाह भी न थी, क्या ऐसा ही था.

सेंट अल्बांस स्कूल में वो मेरा पहला साल था. लेकिन मैं कहूंगा कि वो बहुत विलक्षण क्लास थी और मैं क्लास के मुक़ाबले परीक्षाओं में ज़्यादा बेहतर प्रदर्शन करता था. मुझे पक्का यकीन था कि मैं वाकई अच्छा कर सकता हूं-सिर्फ अपनी हैंडराइटिंग और बेढबपने की वजह से मैं लुढक जाता था.

तीसरा रिकॉर्ड चलाएं.

ऑक्सफोर्ड में जब मैं अंडरग्रेजुएट था, मैने एल्डस हक्सले का उपन्यास 'प्ट्यांट काउंटर प्ट्यांट' पढ़ा. उसे 1930 के दशक की झांकी बताया गया था और उसमें पात्रों की भरमार थी. उनमें से ज़्यादातर तो महज़ 'काईबोर्ड' थे लेकिन एक ऐसा किरदार भी था जो ज़्यादा मानवीय लगता था और ज़ाहिरा तौर पर उसमें हक्सले की खुद की छिव थी. उपन्यास में वह सर ओसवाल्ड मोज़ले के चरित्र पर आधारित एक पात्र को मार डालता है जो बरतानी फाशिस्टों का मुखिया था. फिर वह अपनी पार्टी को बता देता है कि उसने ये काम कर दिया है और ये बताकर बीटोफेन के स्ट्रिंग क्वारटेट(चतुष्टय)-ओपस 132 का रिकॉर्ड ग्रामोफोन पर बजाना शुरू कर देता है. संगीत के तीसरे मोड़ के बीचोंबीच दरवाज़े पर दस्तक होती है. वह दरवाजा खोलने उठता है और फाशिस्टों के हाथों मारा जाता है.

ये वाकई बहुत बुरा नॉवल है लेकिन संगीत के अपने चयन पर हक्सले सही थे. अगर मुझे पता चलता कि ज्वार भाटे से भरी कोई बेक़ाबू लहर मेरे वीरान टापू को निगलने बढ़ी आ रही है तो मैं बीटोफेन के इसी क्वारटेट(चतुष्टय) का तीसरा चरण बजाता.

आप ऑक्सफोर्ड तक गए, यूनिर्वसिटी कॉलेज तक, गणित और भौतिकी पढ़ने जहां आपने अपने खुद के हिसाब से पूरे दिन में करीब एक घंटा ही अपने काम में लगाया. कहा तो ये भी जाता है कि आपने ख़ूब नौका विहार किया, बीयर पी और लोगों के साथ कुछ मस्ती में बेहूदा मजाक भी किए. आपकी क्या समस्या थी. आपका ध्यान काम पर क्यों नहीं लगता था.

ये पचास के दशक के अंत की बात है. और अधिकांश युवाओं का एस्टेब्लिशमेंट से मोहभंग हो गया था. बेतहाशा आराम और ऐय्याशी के अलावा कुछ भी नहीं सूझता था. उस समय कंज़रवेटिव अपना तीसरा चुनाव इस नारे के साथ जीत कर आए ही थे कि 'इतने अच्छे हालात आपको कभी नहीं मिले.' लेकिन मैं और मेरे कई समकालीन, ज़िंदगी से ऊब गए थे.

फिर भी आप उन समस्याओं को चंद घंटों में सुलझा लेते थे जो आपके साथी छात्र हफ्ते लगाकर भी नहीं कर पाते थे. उन्हें शायद मालूम था और जो उन्होंने माना भी है कि आपके पास असाधारण प्रतिभा थी. क्या आपको ये बात पता थी, क्या कहेंगे आप.

ऑक्सफोर्ड में भौतिकी का तत्कालीन कोर्स हास्यास्पद रूप से सरल था. बिना किसी लेक्चर में जाए, सप्ताह में एक या दो ट्यूटोरियल अटेंड कर किसी का भी बेड़ा पार हो जाता, बहुत ज़्यादा तथ्य याद रखने की ज़रूरत नहीं थी, सिर्फ कुछ समीकरणें.

लेकिन क्या ये ऑक्सफोर्ड की बात नहीं जब आपने पहली बार ये नोट किया कि आपके हाथ और पांव ठीक वैसा नहीं कर रहे हैं जैसा कि आप उनसे कराना चाहते थे. उस समय ये बात आपने खुद को किस तरह समझायी.

वास्तव में जो पहली चीज़ मैने नोट की, वो ये थी कि मैं पतवार वाली नाव को ठीक से नहीं खे पा रहा हूं. फिर एक बार मैं कॉलेज में जूनियर कॉमन रूम की सीढ़ियों से बुरी तरह गिर गया था. इस घटना के बाद मैं कॉलेज के डॉक्टर के पास गया क्योंकि मैं चिंतित था कि कहीं मुझे दिमागी चोट तो नहीं आयी. लेकिन उसे लगा कि कोई गड़बड़ नहीं थी और उसने मुझे बीयर कम करने की सलाह दी. ऑक्सफोर्ड में फाइनल इम्तहान के बाद मैं गर्मियों में पर्शिया चला गया. जब मैं लौटा तो निश्चित रूप से कमज़ोर हो गया था, लेकिन मैंने सोचा कि पेट बिगड़ जाने से मेरा ये हाल हुआ होगा.

लेकिन किस मोड़ पर आपने आखिरकार मान लिया कि कुछ न कुछ वाकई गड़बड़ है और फिर चिकित्सा परामर्श लेने का फैसला किया.

मैं उस वक्त कैंब्रिज में था और क्रिसमस में घर चला गया था. 1962-63 का वो कड़ी सर्दी का मौसम था. मेरी मां ने मुझे ज़ोर देकर कहा कि जाओ सेंट अल्बान्स की झील में स्केट कर आओ. जबिक मैं जानता था कि मैं वास्तव में इस हालत में नहीं था. मैं गिर पड़ा और उठने में मुझे बहुत दिक्कत हुई. मेरी मां ने महसूस किया कि कहीं कुछ गड़बड़ है. वो मुझे फैमिली डॉक्टर के पास ले गयी.

और तब अस्पताल में तीन हफ्ते…..वहां आपको और बुरी ख़बर बतायी गयी.

असल में वो लंदन का बार्टस अस्पताल था. क्योंकि मेरे पिता उसी से जुड़े थे. मैं वहां दो सप्ताह रहा, मुझ पर कई परीक्षण हुए लेकिन वहां मुझे ये कभी नहीं बताया गया कि माजरा क्या है, सिवा इसके कि ये एमएस(मल्टीपल स्कलेरोसिस) नहीं है और कि ये कोई टिपिकल केस भी नहीं है. मुझे ये नहीं बताया गया कि ठीक होने की क्या संभावनाएं हैं. लेकिन ये अनुमान तो मैंने लगा ही लिया कि संभावनाएं बहुत क्षीण हैं, इसलिए मैं पूछना नहीं चाहता था.

और आखिरकार आपको बता दिया गया कि जीने के लिए आपके पास महज़ दो चार साल ही हैं. स्टीफन आपकी कहानी के इस मोड़ पर थोड़ा रूकते हैं और आपका अगला रिकॉर्ड बजाते हैं.

'द वालिकरी, एक्ट वन.' मैलकोयर और लैहमन वाला ये दूसरा शुरूआती एलपी था. मूल रूप से ये 78s पर युद्ध से पहले रिकॉर्ड किया गया था और 60 के दशक की शुरूआत में इसे एलपी पर ट्रांसफर किया गया. 1963 में जब मेरी बीमारी का पता चल गया कि ये मोटर न्यूरान डिज़ीज है, मेरा झुकाव वैगनर की तरफ हो गया जो मेरी उस दौर की अंधेरे उदासी और अवसाद से भरी मनोदशा के अनुकूल था. दुर्भाग्यवश मेरा स्पीच सिंथेसाइज़र बहुत पढ़ा लिखा नहीं है और ये वैगनर का उच्चारण W के हल्के स्वर के साथ करता है. मुझे उसे हिज्जे कर बताना पड़ता है V-A-R-G-N-E-R तब जाकर वो क़रीब क़रीब सही स्नायी देता है.

'रिंग' के चार ऑपेरा वैगनर का सबसे बड़ा काम हैं. मैं 1964 में अपनी बहन फिलिप्पा के साथ जर्मनी के बेरूश में उन्हें देखने गया था. उस समय मैं 'रिंग' के बारे में ठीक से नहीं जानता था. और चक्र में दूसरे ऑपेरा 'द वालिकरी' ने मुझ पर ज़बर्दस्त असर डाला. ये वुल्फगांग वैगनर का प्रोडक्शन था और मंच लगभग पूरी तरह से अंधेरे में था. ये दो जुड़वां लोगों की प्रेमकथा है-सिगमंड और सीगलींद जो बचपन में बिछुड़ गए थे. वे दोबारा तब मिल पाते हैं जब सिगमंड को हंडिंग के घर शरण लेनी पड़ती है जो सींगलींद का पित और सिगमंड का जानी दुश्मन है. जो अंश मैने चुना है उसमें सीगलींद, हंडिंग से विवशता में किए विवाह की घटना बताती है. समारोह के बीच एक बूढ़ा आदमी हॉल में आता है. ऑकेस्ट्रा पर वैलहाल्ला बजता है जो रिंग में सबसे प्यारी थीम है क्योंकि वो वोतान है, देवताओं का मुखिया और सिगमंड और सीगलींद का पिता. वो एक पेड़ के तने पर एक तलवार घोंप देता है जो सिगमंड के लिए है. ऑपेरा के इस भाग के अंत में सिगमंड तलवार को खींच निकालता है और दोनों जंगल में भाग जाते हैं.

आपके बारे में पढ़ते हुए स्टीफन, क़रीब क़रीब ऐसा लगता है कि मौत की सज़ा जो आपके लिए तय कर दी गयी थी कि आप दो चार साल में दुनिया से चल बसेंगे, इससे आप जाग गए, और मेरे ये कहने से आपको अगर अच्छा लगे कि, आपको इससे जीवन पर ध्यान केंद्रित करने का मौका मिला.

उसका मुझ पर पहला प्रभाव तो अवसाद का था. लगता था बहुत तेज़ी से मेरी हालत बिगड़ती जा रही है. कुछ भी करने का या अपनी पीएचडी पर काम करने का कोई मतलब नहीं रह गया था क्योंकि मैं नहीं जानता था कि उसे पूरा करने के लिए मैं उतनी देर ज़िंदा भी रह पाऊंगा. लेकिन तभी चीज़ों में कुछ सुधार होना शुरू हो गया. धीरे धीरे ये हालत और बढ़ती गयी और मैने अपने काम में तरक्की की शुरूआत कर दी, विशेषकर ये साबित कर दिखाने में कि ब्रह्मांड की शुरूआत निश्चित रूप से महाविस्फोट से हुई होगी.

आपने अपने एक साक्षात्कार में भी कहा है कि आप खुद को बीमारी से पहले के दिनों के मुक़ाबले अब ज़्यादा खुश पाते हैं.

मैं वाकई अब बहुत खुश हूं. मोटर न्यूरान बीमारी की चपेट में आने से पहले मैं ज़िंदगी से ऊब गया था लेकिन आसन्न मृत्यु की आशंका ने मुझे अहसास करा दिया कि ज़िंदगी तो वाकई जीने लायक है. करने

को इतना कुछ है. इतना कुछ कि कोई भी कुछ भी कर सकता है. मुझे उपलब्धि की एक सच्ची अनुभूति होती है कि मैने अपनी हालत के बावजूद मनुष्य ज्ञान को समर्थ बनाने में एक अदना सा लेकिन महत्वपूर्ण योगदान दिया है. ज़ाहिर है, मैं बहुत खुशिकस्मत हूं लेकिन अगर हर कोई कड़ी मेहनत करे तो उसे कुछ न कुछ ज़रूर हासिल हो सकता है.

क्या आप ये कहने का जोखिम उठा रहे हैं कि अगर आपको मोटर न्यूरान बीमारी न होती तो आप वो सब नहीं हासिल कर पाते जो आपके पास है., या ये कहना सरलीकरण होगा.

नहीं. मैं नहीं मानता कि मोटर न्यूरान बीमारी किसी के लिए भी फ़ायदेमंद हो सकती है. लेकिन मेरे लिए ये दूसरों के मुक़ाबले कम नुकसानदेह इसलिए रही क्योंकि मैं जो काम करना चाहता था उससे ये बीमारी मुझे रोक नहीं पाई, और वो काम ये समझने की कोशिश करने का था कि ब्रहमांड कैसे ऑपरेट होता है.

जब आप अपनी बीमारी से जूझ रहे थे आपकी एक अन्य प्रेरणा थी जेन वाइल्ड नाम की एक युवती जिसे आप एक पार्टी में मिले थे और प्यार कर बैठे थे जिसकी परिणति विवाह के रूप में हुई. अपनी कामयाबी का कितना श्रेय आप उन्हें, जेन को देते हैं.

उसके बिना मैं निश्चित रूप से ये सब मैनेज नहीं कर पाता. उसके प्रेम ने मुझे अवसाद की गहरी दलदल से उबार दिया. शादी से पहले मुझे एक अदद नौकरी चाहिए थी और अपनी पीएचडी को पूरा करना था. मैने कड़ी मेहनत शुरू कर दी और पाया कि उसमें मुझे मज़ा आ रहा है. जैसे जैसे मेरी हालत बिगड़ती गयी जेन ने अकेले अपने दम पर मेरा ख़्याल रखा. उस अवस्था में कोई भी हमारी मदद करने को तैयार न था और हम भी कतई इस हालत में नहीं थे कि मदद की कोई कीमत चुका सकें.

और एक साथ आप दोनों ने डॉक्टरों को हरा दिया, सिर्फ इस रूप में नहीं कि आप बाकायदा ज़िंदा रहे बिल्क इसिलए भी कि आपने संतानें भी पैदा कीं. 1967 में आपका बेटा रॉबर्ट पैदा हुआ, 1970 में बेटी लूसी और फिर 1979 में एक और बेटा-टिमोथी. कितने स्तब्ध थे डॉक्टर लोग.

वास्तव में जिस डॉक्टर ने मेरी बीमारी बतायी थी उसने तो मुझसे पहले ही पल्ला झाड़ लिया. उसको लगता था कि इस मामले में कुछ भी नहीं किया जा सकता था. शुरूआती जांच के बाद मैने उसे फिर कभी नहीं देखा. नतीजतन मेरे पिता मेरे डॉक्टर बन गए. और मैं उनसे ही सलाह लेने लगा. उन्होंने मुझे बताया कि इस बीमारी के आनुवांशिक होने का कोई प्रमाण नहीं है. जेन ने मेरी देखभाल भी की और दो बच्चों की भी. 1974 में कैलिफोर्निया जाने पर ही हमें बाहरी मदद लेनी पड़ी, पहले एक छात्र था जो हमारे साथ रहता था और बाद में ये काम नसीं ने संभाला.

लेकिन अब आप और जेन एक साथ नहीं हैं.

मेरे ट्रेकियोटोमी ऑप्रेशन के बाद मुझे 24 घंटे सुश्रुषा की ज़रूरत थी. उससे विवाह पर ज़्यादा और ज़्यादा दबाव पड़ता गया. नतीज़तन में निकल आया और अब मैं कैंब्रिज में एक नए फ्लैट में रहता हूं. अब हम अलग अलग रहते हैं.

आइये थोड़ा और संगीत सुना जाए

बीटल्स का 'प्लीज़ प्लीज़ मी.' मेरी पहले चार अपेक्षाकृत गंभीर चयन के बाद मुझे कुछ हल्की राहत चाहिए. पॉप के बासी और भद्दे हो चुके माहौल में, मेरे और कईयों के लिए बीटल ग्रुप ताज़ा हवा के झोंके की तरह आया था. मैं रेडियो लक्ज़मबर्ग पर इतवार की शामों को टॉप टवेन्टी सुना करता था.

स्टीफन हॉकिंग, आपको इतने सारे सम्मान मिले,, और इस बात का विशेष उल्लेख ज़रूरी है कि आप कैंब्रिज में गणित के लुकेसियन प्रोफेसर के पद से सम्मानित भी किए गए हैं-ये वही पद है जो आइज़ैक न्यूटन ने भी ग्रहण किया था, इस सब के बावजूद फिर भी आपने अपने काम पर एक लोकप्रिय किताब लिखने का निश्चय किया, मेरे हिसाब से, महज़ एक बहुत ही साधारण वजह से. आपको पैसों की ज़रूरत थी.

मैनें सोचा था कि एक लोकप्रिय किताब से मै कुछ ठीकठाक पैसे कमा लूंगा लेकिन 'अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' लिखने की मुख्य वजह ये थी कि मुझे लिखने में मज़ा आया. मैं पिछले पच्चीस साल में हुई खोज़ों के बारे में उत्तेजित था और लोगों को मैं उनके बारे में बताना चाहता था. मुझे बिल्कुल उम्मीद नहीं थी कि ये किताब इतनी ज़बर्दस्त बिकेगी.

यकीनन, इसने सारे रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिए और बेस्ट सेलर लिस्ट में सबसे लंबे समय तक रहने का रिकार्ड भी इसी के नाम गिनीज़ बुक ऑफ रिकार्डस में दर्ज है. उस लिस्ट में ये अब भी है. किसी को अंदाज़ा नहीं कि दुनिया भर में कितनी कॉपियां बिकी होंगी लेकिन निश्चित रूप से ये संख्या एक करोड़ से ऊपर होगी. लोग ज़ाहिर है इसे खरीदते हैं. लेकिन एक सवाल बार बार पूछा जा रहा है कि क्या वे इसे पढ़ते हैं.

मैं जानता हूं बर्नार्ड लेविन उनतीसवें पेज पर अटक गए थे. लेकिन मैं जानता हूं कि बहुत से लोग और आगे गए होंगे. दुनिया भर में लोग मेरे पास आते हैं और बताते हैं कि उन्हें वो कितनी पसंद आयी. वे उसे पूरा न पढ़ पाए हों या जो कुछ भी पढ़ा हो वह समझ न आया हो लेकिन उन्हें एक विचार तो मिल ही गया है कि हम एक ऐसे ब्रहमांड में रहते हैं जो ऐसे औचित्य भरे नियमों से संचालित है जिन्हें हम खोज सकते हैं और समझ सकते हैं.

ब्लेक होल की अवधारणा ही सबसे पहले लोगों की कल्पना को भा गयी और कॉस्मोलॉजी में लोगों का रूझान फिर बना. क्या आपने कभी उन तमाम तारामंडलियों को देखा है, यूं कहें कि 'हिम्मत बांध कर वहां गए जहां इससे पहले कोई आदमी नहीं गया.' अगर हां तो क्या आपको मज़ा आया.

जब मैं किशोर था तो बहुत सा साइंस फिक्शन पढ़ता था. लेकिन अब जबिक मैं इसी क्षेत्र में काम करता हूं तो अधिकांश गल्प विज्ञान मुझे सतही लगता है. अगर आपको इसे एक मुकम्मल तस्वीर का हिस्सा नहीं बनाना है तो हाइपर स्पेस ड्राइव और प्रकाश से संचालित आवाजाही पर लिखना बहुत आसान है. वास्तविक विज्ञान कहीं ज़्यादा रोचक है क्योंकि वाकई वहां यथार्थ में सब हो रहा है. भौतिकविदों से पहले

गल्प विज्ञान लेखकों ने ब्लैक होल का कभी ज़िक्र नहीं किया. लेकिन अब हमारे पास उनके काफी तादाद में होने के बेहतर प्रमाण हैं.

अगर आप ब्लैक होल में गिर गए तो क्या होगा.

साइंस फिक्शन पढ़ने वाले हर शख्स को पता है कि वहां गिरने से क्या होता है. वहां गिरने से आपका कीमा बन जाता है. लेकिन ज़्यादा दिलचस्प बात ये है कि ये काले गड़ढे पूरी तरह से काले नहीं. एक स्थिर दर से वे कणों को और विकिरणों को वापस भेजते रहते हैं. इस वजह से काला गड़ढा धीरे धीरे वाष्पित होता रहता है. लेकिन अंतिम तौर पर ब्लैक होल और उसकी सामग्री का क्या होता है, ये पता नहीं चल पाया है. ये रिसर्च का एक रोचक क्षेत्र है लेकिन गल्प विज्ञान के लेखकों ने अभी तक इस पर ध्यान नहीं दिया है.

और वो आपने जिन विकिरणों का ज़िक्र किया वो ज़ाहिर है हॉकिंग रेडिएशन कहलाती है. ब्लैकहोल की खोज करने वाले आप नहीं थे फिर भी आप ये साबित कर आए हैं कि वे काले नहीं है. क्या ऐसा नहीं है कि पूर्व में की गयी इन खोजों की बदौलत ही आप ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में और नज़दीक जाकर सोचना शुरू कर पाए.

ब्लैकहोल में बदलने के लिए एक तारे का सिकुड़ना कई मानों में ब्रह्मांड के फैलाव का उलट काल है. एक तारा एक निचले घनत्व वाली अवस्था से बहुत ऊंचे घनत्व वाली अवस्था में विघटित होता है. और ब्रह्मांड एक बहुत ऊंचे घनत्व वाली अवस्था से निचले घनत्वों में फैलता जाता है. एक बहुत अहम अंतर ये है कि हम ब्लैक होल के बाहर और ब्रह्मांड के भीतर हैं. लेकिन दोनों की एक विशेषता है-तापीय विकिरण(थर्मल रेडिएशन).

आप कहते हैं कि ब्लैक होल और उसके माल असबाब का अंतिम तौर पर क्या होता है, ये नहीं मालूम किया जा सका है. लेकिन मुझे लगता है कि आपकी थ्योरी ये है कि जो कुछ भी ब्लैकहोल के भीतर हुआ, जो कुछ भी उसमें अदृश्य हुआ, चाहे वो एक अंतरिक्षयात्री क्यों न हो, वो सब आखिरकार हॉकिंग रेडिएशन के रूप में पुनर्चक्रित(रिसाईकिल) हो जाएगा.

अंतिरिक्ष यात्री की द्रव्यमान ऊर्जा, ब्लैक होल से उत्सर्जित विकिरण के तौर पर रिसाईकिल होगी. लेकिन अंतिरिक्षयात्री खुद या जिन कणों से वो निर्मित है, वे ब्लैक होल से नहीं निकल पाएंगे. इसलिए सवाल ये है कि उनका क्या होता है. क्या वे नष्ट हो जाते हैं या वे अन्य ब्रहमांड में निकल जाते हैं. यही वो बात है जो मैं शिद्दत से जानना चाहता हूं, इसका मतलब ये नहीं कि मेरा इरादा उस काले गड्ढे में कूद जाने का है.

स्टीफन, क्या आप किसी पूर्वाभास(इंट्यूशन) के तहत काम करते हैं- कहने का मतलब ये कि आप किसी ऐसी थ्योरी तक पहुंचते हैं जिसे आप पसंद करते हैं और जो आपको आकर्षित करती है और फिर आप उसे साबित करने में जुट जाते हैं. या एक वैज्ञानिक के तौर पर आपको हमेशा एक नतीजे की तरफ का रास्ता तार्किक ढंग से तय करना पड़ता है और आप पूर्वानुमान लगाने की कोशिश का जोखिम नहीं उठाते.

मैं पूर्वाभास पर बहुत भरोसा करता हूं. मैं किसी नतीजे का अनुमान लगाने की कोशिश करता हूं. लेकिन फिर मुझे वो साबित करना पड़ता है. और इस अवस्था में, कई बार ये पाता हूं कि जो मैने सोचा था वो सच नहीं है या मामला असल में कुछ और है जिसके बारे में मैंने सोचा ही नहीं था. इसी तरह मैने ये पाया कि ब्लैक होल या काले गड्ढे पूरी तरह से काले नहीं हैं. मैं कुछ और साबित करना चाहता था.

और संगीत सुनें ?

मोत्सार्ट हमेशा मेरे प्रिय संगीतकारों में रहे हैं. उन्होंने अविश्वसनीय पैमाने पर संगीत रचनाएं लिखी हैं. इस साल के शुरू में मेरे पचासवें जन्मदिन पर मुझे उनके समस्त काम की एक सीडी भेंट की गयी, दो सौ घंटे से ज़्यादा की. मैं अब भी इसमें मुब्तिला हूं. उनकी महानतम रचनाओं में से एक है- 'रेक्वीम.' मोत्सार्ट इसके पूरा होने से पहले ही चल बसे थे, और उनके एक शागिर्द ने इसे उनके छोड़े टुकड़ों से पूरा किया. जो रचना हम सुनेंगे ये इस रचना का वो अकेला हिस्सा है जिसे मोत्सार्ट ने अपने जीते जी लिपिबद्ध और संगीतबद्ध कर लिया था.

आपके सिद्धांतो का अति सरलीकरण करने के लिए और मुझे उम्मीद है स्टीफन आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे, िक आप एक दौर में मानते थे जैसा िक मुझे समझ आता है िक उत्पित्त का एक बिंदु है-महाविस्फोट. लेकिन आपने आगे कभी ये नहीं माना िक यही मामला था. अब आप मानते हैं िक कोई शुरूआत नहीं थी और न ही कोई अंत है, और ये िक ब्रह्मांड स्वनिर्धारित है. क्या इसका मतलब ये है िक उत्पित्त जैसी कोई घटना नहीं हुई थी और इसीलिए ईश्वर की कोई जगह नहीं है.

जी हां आपने अति सरलीकृत कर दिया है. मैं अब भी ये मानता हूं कि वास्तविक समय में ब्रहमांड का प्रारंभ था, महाविस्फोट के रूप में. लेकिन एक दूसरी तरह का समय भी है, काल्पनिक समय, जो वास्तविक समय के समकोण पर अवस्थित है जिसमें ब्रहमांड का न प्रारंभ है न ही अंत. इसका अर्थ ये हुआ कि ब्रहमांड की शुरूआत कैसे हुई, ये तय होगा भौतिकी के नियमों से. किसी को ये नहीं कहना पड़ेगा कि ईश्वर ने किसी ऐसे निरंकुश तरीके से ब्रहमांड की रचना की जो हमारी समझ से बाहर है. ये इस बारे में कुछ नहीं कहता कि ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं-इतना बताता है कि ईश्वर मनमानी नहीं कर सकता.

अगर इस बात की संभावना है कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है तो फिर आप उन चीज़ों के बारे में क्या कहेंगे जो विज्ञान से इतर हैं- प्रेम, विश्वास जो लोगों में रहता है और जो उनमें आपके लिए है और यकीनन आपकी अपनी प्रेरणा से भी जुड़ा है.

प्रेम, विश्वास और नैतिकता भौतिकी की अलग कैटगरी में आते हैं. आप भौतिकी के नियमों से ये नहीं बता सकते कि किसी आदमी को कैसा व्यवहार करना चाहिए. लेकिन ये उम्मीद की जा सकती है कि भौतिकी और गणित के तर्कसंगत विचार, नैतिकता को व्यवहार में लाने में किसी का मार्गदर्शन कर सकते हैं.

लेकिन मेरे ख्याल से कई लोग ये मानते हैं कि आपने असरदार ढंग से ईश्वर की खिल्ली उड़ाई है. तो फिर क्या आप इस बात को नकार रहे हैं. जो कुछ भी मेरे काम ने दिखाया है उसमे ये है कि आपको ये नहीं कहना पड़ता कि ईश्वर की मनमर्जी से ब्रहमांड प्रकट हुआ. लेकिन आपके पास तब भी एक सवाल रहता है-'फिर भला ये ब्रहमांड अस्तित्व में क्योंकर है' . अब ये सवाल ऐसा है कि आप चाहें तो इसका जवाब देने के लिए ईश्वर की परिभाषा गढ़ सकते हैं.

आइये, सातवां रिकार्ड बजाएं.

मुझे ऑपेरा बहुत पसंद है. मैने सोचा था कि मेरी सभी आठों डिस्क, ऑपेरा वाली हों. ग्लक से लेकर मोत्सार्ट तक, वैगनर से होते हुए, वेडीं और प्युचिनी तक. लेकिन अंत में मै दो ही चुनता हूं. एक होना चाहिए वैगनर और दूसरा प्यूचिनी. 'तूरांदों' उनका सर्वश्रेष्ठ ऑपेरा है लेकिन फिर देखिए कि इसे पूरा करने से पहले उनकी मृत्यु हो गयी. जो अंश मैने चुना है उसमें प्राचीन चीन की एक राजकुमारी की कथा है कि कैसे उसका बलात्कार कर मंगोल उसे अपने साथ ले जाते हैं. इसका बदला लेने के लिए 'तूरांदों' अपने चहेतों से तीन सवाल पूछने जा रही है. अगर वे जवाब न दे पाए तो उन्हें फांसी पर लटका दिया जाएगा.

आपके लिए क्रिसमस का क्या अर्थ है

ये कुछ कुछ अमेरिका वालों के थैक्स गिविंग की तरह है, एक ऐसा मौका जब आप अपने परिवार के साथ होते हैं और पिछले साल का शुक्रिया अदा करते हैं. ये वो समय भी है जब आप आगे के साल की तरफ देखते हैं जैसा कि एक अस्तबल में एक शिश् के जन्म के रूप में दर्शाया गया है.

और भौतिक इच्छाओं की बात करें, आपने कौन से उपहारों की फरमाइश की है- या फिर इन दिनों आप इतने संपन्न है कि आप एक ऐसे शख्स हैं जिसके पास सब कुछ है

मैं विस्मय को तवज्जो देता हूं. अगर किसी खास चीज़ की मांग कर ली जाए तो आप देने वाले को उसकी आज़ादी से वंचित कर देते हैं या उसे अपनी कल्पनाशीलता का उपयोग करने के अवसर से रोक देते हैं. लेकिन मुझे ये पता चल जाने में अब कोई संकोच नहीं कि मैं चॉकलेट ट्रफल्स का दीवाना हूं.

अभी तक स्टीफन आप अनुमान से तीस साल ज़्यादा जी गए हैं. आपकी संताने भी हैं जो कहा गया था कि आप कभी पैदा नहीं कर पाएंगे, आपने एक बेस्टसेलर लिख डाली है, दिक् और काल के बारे में वर्षों पुरानी मान्यताओं से भरे लोगों के मस्तिष्कों को आपने बदल डाला है. इस ग्रह से विदा होने से पहले आप और क्या करने की योजना बना रहे हैं स्टीफन.

ये सब इसीलिए मुमिकन हो सका क्योंकि मैं ख़ुशिकस्मत रहा हूं कि मुझे भारी सहयोग मिलता रहा है. मैं जो कुछ हासिल कर पाया उससे ख़ुश हूं. लेकिन जाने से पहले मैं बहुत कुछ करना चाहता हूं. मैं अपनी निजी ज़िंदगी के बारे में बात नहीं करूंगा लेकिन वैज्ञानिक तौर पर मैं ये जानना चाहता हूं कि ग्रैविटी और क्वांटम मैकेनिक्स को कैसे एकीकृत किया जाए. विशेष रूप से मैं ये जानना चाहता हूं कि वाष्पीकृत होने के बाद ब्लैक होल का क्या होता है.

और अब अंतिम रिकॉर्ड

इसका उच्चारण करने में आपको मेरी मदद करनी होगी. मेरा स्पीच सिंथेसाइज़र अमेरिकी है और फ्रांसीसी में ये निराश करता है. ये हैं Edith Piaf जो गा रहे हैं 'je ne regretted rien'. इसमें मेरी ज़िंदगी का निचोड़ है.

अब स्टीफन अगर आपको उन आठों रिकॉर्डों में से किसी एक को ही ले जाना हो तो वो कौन सा होगा.

वो मोत्सार्ट का 'रेक्वेम' होना चाहिए. मैं उसे तब तक सुन सकता हूं जब तक कि मेरे डिस्क वॉकमैन की बैटरी जवाब न दे जाएं.

और आपकी किताब. ज़ाहिर है शेक्सपियर का संपूर्ण काम और बाईबल यहां पड़े हैं.

मैं सोचता हूं कि मैं जॉर्ज इलियट की 'मिडिल मार्च' ले जाऊंगा. किसी ने, शायद वर्जीनिया वूल्फ ने, कहा था कि ये किताब व्यस्कों के लिए है. मुझे नहीं पता कि मैं अभी बड़ा हो पाया हूं या नहीं, लेकिन फिर भी मैं इसे पढ़ने की कोशिश करूंगा.

और विलासिता यानी ऐश के लिए क्या ले जाएंगे.

मैं ढेर सारी 'क्रेमे ब्र्अले' (Crème brûlée-फ्रांसीसी डेज़र्ट, अंग्रेज़ी में बर्न्ट क्रीम) लूंगा. मेरे लिए वही सबसे बड़ी ऐश है.

चॉकलेट ट्रफल्स नहीं ! तो फिर: ये रही आपके लिए ढेर सारी क्रेमे ब्रुअले ! डॉ स्टीफन हॉकिंग, हमें अपने निर्जन द्वीप का संगीत सुनाने के लिए आपका बहुत बहुत धन्यवाद और हैप्पी क्रिसमस,

मुझे बुलाने के लिए आपका धन्यवाद. मैं अपने वीरान टापू से आप सबको क्रिसमस की शुभकामनाएं देता हूं. शर्तिया मैं आपसे बेहतर हाल में हूं.

(प्रसिद्ध ब्रिटिश भौतिकविद् स्टीफन हॉकिंग का प्रस्तुत इंटरव्यू उनकी किताब black holes and baby universes and other essays से साभार लिया गया है. बैंटम बुक्स प्रकाशन से ये किताब 1993 में प्रकाशित हुई थी. इस इंटरव्यू के अनुवादक हैं शिवप्रसाद जोशी जो हमारे दौर की बेहद महत्वपूर्ण पत्रिका पहल में प्रकाशित हो चुका है)

हाशिये की बात

कठुआ कांड: औरतों को यौन वस्तु समझने की राजनीति

आनंद तेलतुम्बड़े

महाराष्ट्र के पूर्व अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक और अब मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री सत्यपाल सिंह ने, जिन पर भारत के युवाओं की शिक्षा के प्रशासन की जिम्मेदारी है, अपनी समझदारी का नमूना दिखाते हुए यह दावा किया कि डार्विन गलत थे। लेकिन कठुआ में संघ परिवार के उनके संगियों की करतूत को देखते हुए यह सोचा जा सकता है कि शायद वो सही हैं।

आठ साल की आसिफा को अगवा करने में जो बर्बरता दिखाई गई, वह इस धरती पर किसी भी ऐसे सभ्य इंसान को झकझोर देने और शर्मिंदा कर देने के लिए काफी है जिसे इन लोगों के इस बदतर हालत में विकसित हो जाने में यकीन हो: उसे एक मंदिर में बंद करके भूखे रखा गया और पांच दिनों तक उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया गया, बेरहमी से उसकी हत्या की गई और उसकी कुचली हुई लाश को एक जंगल में फेंक दिया गया, ताकि उसके मुस्लिम बाकरवाल समुदाय को डरा कर उस इलाके से भगा दिया जाए।

और मानो यह बर्बरता ही काफी न हो, सत्यपाल की ही वैचारिक मंडली के लोगों ने, जम्मू बार असोसिएशन में हिंदू एकता मंच के सदस्य और संघ परिवार से जुड़े दूसरे गिरोहों ने बलात्कारियों के समर्थन में एक घिनौना जुलूस निकाला, जिसका नेतृत्व भाजपा के मंत्री कर रहे थे। यह बताने के लिए वे राष्ट्रीय झंडे फहरा रहे थे कि वह अमानवीय करतूत एक राष्ट्रवादी उपलब्धि थी। यह डार्विन के गलत होने का एक और सबूत था – जानवर से इंसान बनने (यानी उद्विकास) की एक लंबी प्रक्रिया से गुजरने के बाद, इंसानी शरीर वाले लोग वहशी जानवरों से तो बदतर नहीं ही हो सकते।

ऐसी अनेक करतूतें भी हैं, जिनकी इस करतूत के साथ ठीक-ठीक तुलना तो नहीं की जा सकती, लेकिन जो पक्के तौर पर इसकी निशानी हैं कि हमने सभ्य दुनिया में अपनी जगह पर दावा करते हुए जो थोड़ी-बहुत तरक्की की थी, हम उससे पीछे जा रहे हैं।

आती हुई गर्मियों की गहमागहमी

अप्रैल में गर्मियों के मौसम की शुरुआत में ऐसी अनेक घटनाएं घटीं, जिन्होंने हमारे वक्त की हताशा और गमगीनी को और गहरा कर दिया। जिन दिनों इस देश को जनवरी में आसिफा के साथ घटी घटना का पता लगा, जब बलात्कारियों के समर्थन में हिंदुत्व कट्टरपंथियों ने प्रदर्शन किए, उन्हीं दिनों एक 17 साल की लड़की की त्रासद दास्तान भी सामने आई, जिसका उत्तर प्रदेश में उन्नाव विधानसभा क्षेत्र से भाजपा विधायक कुलदीप सिंह सेंगर ने 4 जून 2017 को बलात्कार किया था और इसके बाद विधायक के तीन साथियों द्वारा उसका अपहरण करके उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया गया था।

यह घटना तब उजागर हुई जब लड़की ने 9 अप्रैल को योगी आदित्यनाथ के आवास के सामने खुद को जलाने की कोशिश की। उसी दिन उसके पिता की न्यायिक हिरासत में मौत हो गई थी। उन्हें सेंगर के भाई के नेतृत्व में सेंगर समर्थकों ने ब्री तरह मारा था क्योंकि उन्होंने एफआईआर वापस लेने से इन्कार कर दिया था।

पुलिस ने हमलावरों को गिरफ्तार करने के बजाए लड़की के पिता को ही न्यायिक हिरासत में ले लिया, जहां उनकी मौत हो गई। इसके बाद भड़के गुस्से के नतीजे में ही जाकर सेंगर के नाम पर एक बाकायदा एफआईआर दर्ज हुआ और सीबीआई ने उसे पूछताछ के लिए हिरासत में लिया।

नाबालिग लड़िकयों के साथ बलात्कार के इन दो मामलों के सामने आने के बाद, खबरों में लड़िकयों के साथ बलात्कार और उनकी हत्या की इतनी खबरें आने लगीं, मानो लग रहा था कि भारत 'बच्चियों के बलात्कार' का एक महीना मना रहा हो। चार महीने की बच्चियां तक इसकी शिकार बन रही थीं।

एक तरफ तो नागरिक समाज में ऐसी घटनाएं हो रही थीं, वहीं उनके साथ राज्य द्वारा लिए जाने वाले फैसले और कार्रवाइयों का सिलसिला मानो एक होड़ लगा रहा था। अगर कुछेक की ही मिसाल दें, तो सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसी अनेक याचिकाओं को बड़ी नाराजगी के साथ खारिज कर दिया, जिनमें रहस्यमय हालात में और संदिग्ध राजनीतिक मोड़ पर जज लोया की अचानक होने वाली मौत की स्वतंत्र जांच कराने की मांग की गई थी।

गुजरात उच्च न्यायालय ने माया कोडनानी को बरी कर दिया, जिसे 2012 में एक विशेष अदालत ने 2002 में गुजरात दंगों के दौरान नरोदा पाटिया मामले की 'मुख्य साजिशकर्ता' बताया था, जिसमें 97 मुसलमान मार दिए गए थे – और यह पहली रिहाई नहीं थी; गुजरात 2002 में शामिल ज्यादातर अपराधी छूट चुके हैं, और इसके पीड़ितों के लिए इंसाफ की मांग करने वाला सबसे प्रमुख चेहरे तीस्ता सीतलवाड़ को लगातार परेशान किया जा रहा है।

आतंक-विरोधी एक विशेष अदालत ने हिंदू साधु स्वामी असीमानंद और चार दूसरे लोगों को 2007 के मक्का मस्जिद बम धमाके के मामले में रिहा कर दिया, जिसमें 18 मई 2007 को नौ लोग मारे गए थे और 58 घायल हुए थे। गुजरात 2002 की ही तरह, 'भगवा' आतंक की इन कार्रवाइयों के ज्यादातर आरोपित छूट चुके हैं, और दूसरी तरफ पुलिस 31 दिसंबर 2017 को पुणे में यलगार परिषद के संबंध में कार्यकर्ताओं के घरों पर छापे मार रही है।

इस आखिरी मामले में, महाराष्ट्र के नरेंद्र मोदी माने जाने वाले मुख्यमंत्री देवेंद्र फड़नवीस ने एक बयान दिया कि इन छापों का यलगार परिषद से कोई लेना-देना नहीं था। यह झूठ फौरन ही उजागर हो गया, जब सामाजिक कार्यकर्ताओं ने तलाशी वारंट की एक कॉपी लोगों के बीच प्रसारित की, जिसमें साफ-साफ भीमा-कोरेगांव हिंसा का हवाला था।

अगर वे सचमुच में भीमा-कोरेगांव से संबंधित थे, तो फिर यह समझना मुश्किल है कि तब नागपुर में वकील सुरेंद्र गडलिंग और दिल्ली में रोना विल्सन के घरों पर किस तर्क से छापा मारा गया, जिनका यलगार परिषद या भीमा-कोरेगांव हिंसा से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं था। जहां फड़नवीस ने 1 जनवरी 2018 को हुई हिंसा के लिए एक एफआईआर में पहले आरोपित संभाजी भिडे को क्लीनचिट दे दी, वहीं वे उन कार्यकर्ताओं को लगातार परेशान कर रहे हैं, जो एक दिन पहले हुए यलगार परिषद के साथ जुड़े थे या न भी जुड़े हों।

बलात्कार और भाजपा

भाजपा के मई 2014 में सत्ता में आने के बाद से, बलात्कार की घटनाओं में साफ तौर पर तेजी से इजाफा हुआ है। एनसीआरबी की क्राइम इन इंडिया रिपोर्ट्स के मुताबिक, 2010 से 2016 के बीच प्रति एक लाख आबादी पर बलात्कार की घटनाएं और उनकी दर इस प्रकार है:

वर्ष	2010	2011	2012	2013	2014	2015	2016
बलात्कार की घटनाएं	22172	24206	24926	33707	36735	34651	38947
दर	3.9	4.1	4.3	5.7	6,1	5.7	6.9

स्रोत: 2010-12 के लिए आंकड़े तालिका 1.3, <u>काइम</u> इन इंडिया 2013 से. 2013 के लिए आंकड़े तालिका 1.3 काइम इन इंडिया 2014 से. 2014-2016 के लिए ओंकड़े, तालिका 1.2, _{काइम} इन इंडिया 2010 से.

यह साफ-साफ दिखाता है कि जहां बरसों के दौरान बलात्कार की घटनाओं में लगातार एक इजाफा हो रहा था और संप्रग सरकार के आखिरी साल (2013) में इसमें खासा उछाल आया, वहीं इसके बाद इसमें एक तीखी बढ़ोतरी हुई है।

संप्रग और राजग के तीन सालों के दौरान बलात्कार की घटनाओं का औसत क्रमश: 27613 और 36778 है, और प्रति लाख आबादी पर घटनाओं की दर क्रमश: 417 और 6123 है, जिसका मतलब है कि भाजपा के शासनकाल में बलात्कार की घटनाओं में और इसकी दर, दोनों में ही 33 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है।

संभव है कि इस चिंताजनक इजाफे की कोई ऐसी वजह पेश करना मुश्किल हो जिसको निर्विवाद रूप से कबूल किया जा सके, लेकिन इस पर जरूर गौर किया जा सकता है कि इस इजाफे में ज्यादातर भाजपा की हुकूमत वाले राज्यों का योगदान है। क्या ऐसा भारत के सामंती अतीत के वैचारिक महिमामंडन की वजह से हो रहा है, जिसमें औरतों को मर्दों के लिए महज एक यौन वस्तु समझा जाता था?

ज्यादातर हिंदू धर्मशास्त्रों में – जिसकी एक प्रमुख मिसाल मनुस्मृति हो सकती है – औरतों को लेकर बेहद खौफनाक हवाले हैं।[1] गर्भ में ही बच्चियों को मार देने की घटनाएं हिंद्ओं में सबसे ज्यादा हैं, जो भाजपा शासित राज्यों में चिंताजनक लैंगिक अनुपात से जाहिर होता है। लैन्सेट द्वारा 2011 में किए गए एक अध्ययन के मुताबिक पिछले तीन दशकों में 1 करोड़ 20 लाख बच्चियों को जन्म से पहले ही मार दिया गया।[2]

बलात्कार के ऐसे मामलों की संख्या चिंताजनक रूप से बढ़ रही है, जिनमें भाजपा नेता अभियुक्त हैं। इस बात की गंभीरता को समझने के लिए 2016 और 2017 की कुछेक घटनाओं की एक झलक काफी है: उत्तराखंड पुलिस ने भाजपा नेता हरक सिंह रावत को एक 32 वर्षीय महिला के बलात्कार और उत्पीड़न के लिए गिरफ्तार किया। [3] एक भाजपा नेता वेंकटेश मौर्य पर चित्रदुर्ग की एक 38 वर्षीय महिला के बलात्कार के मामले में आरोप लगाए गए।[4]

गुजरात में एक स्थानीय भाजपा नेता अशोक मकवाना को 29 मई को इंडिगो एयरलाइंस की गोआ-अहमदाबाद उड़ान के दौरान 13 साल की एक लड़की के साथ छेड़खानी के आरोप में गिरफ्तार किया गया।[5] मध्य प्रदेश में एक स्थानीय भाजपा नेता और उसके पांच साथियों पर एक आदिवासी लड़की को अगवा करके उसके साथ सामृहिक बलात्कार करने के आरोप हैं, क्योंकि पुलिस के मुताबिक, उसने भाजपा नेता पर दर्ज कराए गए छेड़खानी के मामले को वापस लेने से मना कर दिया था।[6]

एक कॉरपोरेटर और भाजपा की मीरा-भयंदर ईकाई के महासचिव और म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन की वार्ड समिति के अध्यक्ष अनिल भोसले पर एक 44 वर्षीया महिला का बलात्कार और अप्राकृतिक सेक्स करने का आरोप है।[7] एक स्थानीय भाजपा नेता भोजपाल सिंह जादोन और उसके दो साथियों पर एक दलित महिला का सामूहिक बलात्कार करने का आरोप दर्ज है। मध्य प्रदेश में मोरेना में सुमावली गांव की निवासी इस महिला को बीपीएल कार्ड दिलाने में मदद करने का वादा किया गया था।[8]

दिल्ली में भाजपा के पूर्व विधायक विजय जॉली पर बलात्कार का मामला दर्ज है। शिकायतकर्ता ने बताया कि जॉली ने ग्ड़गांव के एक रिज़ॉर्ट में उसके ड्रिंक में नशीली दवा मिला कर उसका यौन उत्पीड़न किया था।[9]

गुजरात से भाजपा के एक विधायक जयेश पटेल के खिलाफ, जो वडोदरा में निजी मालिकाने वाली पारुल यूनिवर्सिटी का संस्थापक अध्यक्ष है, एक 22 वर्षीय नर्सिंग छात्रा के बलात्कार का मामला दर्ज है।[10] रेक्टर भावना पटेल पर भी अपराध में मददगार होने का मामला दर्ज है।

ये बलात्कार के इक्के-दुक्के मामले भर नहीं हैं, जिनमें भाजपा के लोगों पर अपराध के आरोप लगे हैं। बलात्कार की पीड़ित एक महिला के लिए ताकतवर लोगों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराना भी कितना मुश्किल होता है, यह बात उन्नाव मामले से भी उजागर होती है।

लोकतंत्र का तेजी से पतन

धूमधाम से होने वाले सरकारी प्रचार के बावजूद, भाजपा की हुकूमत के ये चार साल लोकतंत्र के तेज रफ्तार पतन को दिखाते हैं, जिसमें कानून व्यवस्था और तार्किक और वैज्ञानिक नजरिए की जड़ें उखड़ती जा रही हैं। देश में सभी संस्थानों का भगवाकरण होना और स्वतंत्र न्यायपालिका का, जो भारत में अवाम की आखिरी उम्मीद है, कमजोर पड़ते जाना लोकतंत्र के भविष्य के लिहाज से चिंताजनक है।

इसकी सबसे बड़ी मिसाल मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा को लेकर पैदा हुआ विवाद है, जिनके खिलाफ अभूतपूर्व तरीके से सर्वोच्च न्यायालय के चार वरिष्ठ जजों ने खास तौर पर बुलाई गई एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में अपनी बातें रखीं और हाल ही में विपक्ष जिनके खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव लेकर आया।

फिलहाल पूर्व भाजपा अध्यक्ष और अब राज्यसभा के सभापित वेंकैया नायडू ने महाभियोग के प्रस्ताव को खारिज कर दिया है, जिससे किसी और अभूतपूर्व संवैधानिक विवाद के खड़ा होने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

एक तरफ जहां सभी संवैधानिक अच्छाइयों को व्यवस्थित तरीके से खत्म किया जा रहा है, वहीं इस संविधान के शिल्पकार कहे जाने वाले आंबेडकर को भव्य स्मारकीय छवि दी जा रही है। अप्रैल में एक अहम आयोजन उनके नाम पर हुआ, जिसमें दिल्ली के 26 अलीपुर रोड में उनके लिए एक भव्य राष्ट्रीय स्मारक का उद्घाटन किया गया।

उलझन में पड़े दिलतों के मन में यह सवाल पैदा होता है कि कहीं आंबेडकर के नाम पर स्मारक, उनकी आवाज को दफनाए जाने के लिए तो नहीं बनाए जा रहे हैं। क्या यह हिंदू धर्म में औरतों को देवियों का दर्जा देने, लेकिन जीती-जागती औरतों को अमानवीय स्तर तक दबा कर और कुचल कर रखने के तरीके से मेल नहीं खाता है?

भाजपा के शासन का एक और शिकार तार्किकता और वैज्ञानिक नजिरया है, जिन्हें प्रोत्साहित करने की बात खुद संविधान में ही कही गई है, जो उन्हें लोकतंत्र का जरूरी उपकरण मानता है। छोटा हो या बड़ा, हरेक भाजपा नेता ने अतार्किकता को बढ़ावा देने में भारी योगदान दिया है, और इस अभियान की अगली कतार में खुद प्रधानमंत्री ही खड़े रहे हैं।

याद कीजिए कि 2014 में ही उन्होंने कहा था कि भारत में प्रजनन की जीन तकनीक और प्लास्टिक सर्जरी महाभारत काल में मौजूद थी। हाल ही में त्रिपुरा के मुख्यमंत्री बिप्लब देब ने कहा कि महाभारत काल में इंटरनेट मौजूद था और राज्य के राज्यपाल तथागत रॉय ने उन्हें अपना समर्थन दिया, जिनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे राष्ट्र के विवेक की रखवाली करेंगे।

वे सभी जो अब तक डार्विन में यकीन रखते आए हैं कि इंसान तरक्की की राह पर आगे बढ़ रहे हैं, वे इस घनौनी पतनशीलता पर अवाक रह जाएंगे। इसीलिए, सत्यपाल सिंह ही सही मालूम पड़ते हैं जब वे कहते हैं कि डार्विन गलत थे!

संदर्भ :

1. सृष्टि गोविलकर, 'दीज 33 शॉकिंग वर्सेज़ फ्रॉम मनुस्मृति अबाउट वुमेन विल इन्फ्युरिएट यू', http://www.lyouthconnect.lin/2015/07/09/33-shocking-verses-from-manusmriti-about-women/

- 2. नीता भल्ला द्वारा उद्धृत, https://in|reuters|com/journalists/nita-bhalla
- 3. जी न्यूज, 30 जुलाई 2016
- 4. डेक्कन क्रॉनिकल, 19 अक्तूबर 2016
- 5. द हिंदू, 1 नवंबर 2016
- 6. डेक्कन क्रॉनिकल, 18 दिसंबर 2016
- 7. टाइम्स ऑफ इंडिया, 20 जनवरी, 2017
- 8. हिंदुस्तान टाइम्स १ मार्च २०१७
- 9. इंडिया टुडे, 23 फरवरी 2017
- 10. इंडियन एक्सप्रेस, 20 जून 2016

(यह लेख हाशिया ब्लॉग से साभार, इसका अनुवाद रेयाज उल हक ने किया है।)

नागरिकता कान्न में सांप्रदायिक संशोधन

मई के दूसरे सप्ताह में संयुक्त संसदीय समिति ने नागरिकता (संशोधन) बिल 2016 पर जनसुनवाई करने के लिए असम और मेघालय का दौरा किया। नागरिकता (संशोधन) बिल का मकसद नागरिकता एक्ट 1956 में संशोधन करना है। नागरिकता देने के लिए धर्म को आधार बनाने की वजह से इन संशोधनों का पहले से विरोध होता रहा है। जन सुनवाई के दौरान भी इन संशोधनों का भारी विरोध हुआ और धार्मिक आधार वाले तर्क की समस्या को भी सभी विरोध करने वाले पक्षों ने उठाया। जन सुनवाई के दौरान इस बिल का एक और खतरनाक पहलू उभर कर आया। इस बिल की वजह से असम के ब्रह्मपुत्र घाटी और बराक घाटी की जनता के बीच वैमनस्य पैदा होने की संभावना दिखाई दी। संयुक्त संसदीय समिति के दौरे के बाद असम के मुख्यमंत्री को जनता से शांति एवं सद्भाव कायम रखने की अपील करनी पड़ी।

भारत में राष्ट्रीयताओं की समस्या जिटल रही है। साथ ही शासक वर्ग द्वारा जनता के बीच फूट डालने के लिए राष्ट्रीयताओं के भेद को जिस तरह से इस्तेमाल किया गया उसने इस समस्या को और भी ज्यादा जिटल बना दिया। असम के मामले में इन चीजों के अलावा बांग्लादेशी अप्रवासी और शरणार्थियों के प्रति विद्वेष भड़काने वाली रणनीति ने भी अपना जहरीला प्रभाव छोड़ा। अब जैसे इतना ही काफी न हो, भाजपा सरकार नागरिकता एक्ट में साम्प्रदायिक संशोधन के द्वारा मुसलमानों की दोयम दर्जे की स्थिति को तो पुख्ता कर ही रही है, साथ ही असम और पूरे देश में साम्प्रदायिक विद्वेष भड़काने के लिए बारूद इकट्ठा कर रही है। असम की भाजपा सरकार ने नागरिकता (संशोधन) बिल पर अपना रुख स्पष्ट करने के लिए नागरिकों के राष्ट्रीय रजिस्टर की सूची जारी होने तक का समय मांगा है। असम सरकार का कहना है कि इस सूची के जारी होने के बाद अप्रवासियों के धार्मिक संगठन की स्थिति जानने के बाद वह अपनी अवस्थित स्पष्ट करेगी। साफ है कि भाजपा इस सूची का इंतजार मुस्लिम अप्रवासियों के खिलाफ विषवमन के लिए कर रही है।

भारत की आबादी में एक भारी संख्या बांग्लादेशी लोगों की है। ये बांग्लाभाषी हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। असम के दक्षिणी तीन जिले जो बराक घाटी में आते हैं, वहां बहुसंख्यक आबादी बांग्लाभाषियों की है। इन बांग्लाभाषियों में मूल निवासियों के साथ-साथ 1947 के पहले और उसके बाद में अलग-अलग समय पर आने वाले अप्रवासी भी हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान चाय बागानों और अन्य उद्यमों में काम करने के लिए तत्कालीन बंगाल और देश के अन्य हिस्सों से लोगों को लाया गया था। 1947 से 1971 के बीच भी तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान (आज का बांग्लादेश) से अप्रवासी आते रहे। 10 लाख बांग्लादेशी अप्रवासी 1971 में बांग्लादेश के जन्म के लिए होने वाले संघर्ष के समय असम आए। इनमें से 1 लाख लोग संघर्ष समाप्ति के पश्चात भी भारत में रुके रहे। 1979 से 1985 के बीच असम में बगैर दस्तावेजों के रह रहे अप्रवासियों के खिलाफ आंदोलन चला। इस आंदोलन की समाप्ति 1985 के असम समझौते द्वारा हुई। यह समझौता केन्द्र सरकार और आंदोलन के नेताओं के बीच हुआ। इस समझौते में तय किया गया कि 1961 से पहले आने वाले अप्रवासियों को पूर्ण नागरिकता दी जाए। 1971 के बाद आने वाले अप्रवासियों को वापस उनके देश भेजा जाए। 1961 से 1971 के बीच आने वाले अप्रवासियों को 10 साल तक वोट देने के अधिकार को छोड़कर नागरिकता के अन्य सभी अधिकार दिए जाएं। नागरिकता (संशोधन) बिल,

2016 का विरोध करने वाले असमी लोगों का एक तर्क यह भी है कि यह बिल असम समझौते का उल्लंघन करता है।

जिस नागरिकता एक्ट, 1955 में संशोधन की बात भाजपा सरकार कर रही है, वह उन विभिन्न तरीकों को स्पष्ट करता है जिसके आधार पर नागरिकता हासिल की जा सकती है। इसमें जन्म, वंश, पंजीकरण, देशीयकरण (नेचुरेलाईजेशन) और भारत में किसी परिक्षेत्र के समावेश द्वारा नागरिकता मिलने की बात कही गयी है। इसके अतिरिक्त यह एक्ट अप्रवासी भारतीयों के पंजीकरण और उनके अधिकारों का विनियमन करता है। यह एक्ट अवैध प्रवासियों को परिभाषित करता है और उनके द्वारा नागरिकता हासिल करने के लिए भारत में 11 वर्ष के निवास की शर्त रखता है तथा अनधिकृत तौर पर देश में रह रहे विदेशियों को अवैध प्रवासी बताता है। नागरिकता(संशोधन) बिल, 2016 इन उपरोक्त दोनों शर्तों में संशोधन करता है। इसके अनुसार अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान के हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई अवैध प्रवासी नहीं माने जायेंगे, भले ही उनके पास कोई पासपोर्ट या वीजा न हो। साथ ही इन्हें देशीयकरण द्वारा नागरिकता हासिल करने के लिए 11 वर्ष के बजाय 6 वर्ष का ही निवास पर्याप्त होगा। इस तरह यह संशोधन धर्म के आधार पर भेद-भाव करता है और मुस्लिम, यहूदी आदि धर्मावलम्बियों के लिए नागरिकता आदि कठिन बना देता है। चूंकि इस संशोधन के पारित होने के बाद 1971 के बाद आए हिन्दू बांग्लादेशी प्रवासी देश के नागरिक बन जायेंगे, इस तरह इस पर असम समझौते के उल्लंघन का आरोप लग रहा है।

संयुक्त संसदीय सिमिति की जन सुनवाई के दौरान गुवाहाटी और सिलचर में अलग-अलग प्रतिक्रिया दिखाई दी। गुवाहाटी में बिल का विरोध करने वाले लोग इतनी भारी संख्या में आए कि सिमिति को व्यक्तिगत तौर पर पक्ष जानने के बजाए आँन लाइन अपना पक्ष भेजने के लिए कहना पड़ा। गुवाहाटी ब्रह्मपुत्र घाटी में पड़ता है जहां बांग्लाभाषी अल्पसंख्या में हैं और यहां के असमी भाषी बिल को बांग्लाभाषियों की संख्या बढ़ाने के खतरे के रूप में देखते हैं। सिलचर जो कि बराक घाटी में पड़ता है, वहां सिमिति के सामने ज्यादातर प्रतिवेदन संशोधन के पक्ष में थे। मेघालय में सरकार समेत अन्य अधिकांश प्रतिवेदन संशोधन के विरोध में थे। सिमिति ने फिलहाल अपनी जनसुनवाई स्थिगित कर दी है और नागरिकों के राष्ट्रीय रिजस्टर के जारी होने पर पुनः जन सुनवाई करने की बात की है। सिमिति को अपनी रिपोर्ट संसद के मानसून सत्र में पेश करनी है।

देश की जनता की सजगता ही यह सुनिश्चित कर सकती है कि भाजपा इस बिल का इस्तेमाल 2019 के चुनाव के तमाम हथियारों में से एक हथियार के रूप में न कर सके।

('नागरिक' से साभार)

झारखण्ड : लैंड बैंक के खिलाफ आदिवासियों की राज्यपाल से ग्हार

8 जून 2018 को रांची में आदिवासी मूलवासी अस्तित्व रक्षा मंच के बैनर तले जनिधिकारों एवं मानविधिकारों को लेकर विशाल जनरेली का आयोजन किया गया जो मोरहाबादी मैदान के पास से निकल कर कचहरी चौक होते हुए राजभवन तक पहुंची। राजभवन पर एक विशाल जन सभा की गई तथा राज्यपाल को ज्ञापन सौंपा गया। पांचवीं अनुसूची के प्रावधान अधिकारों को लागू करने, सीएनटी एक्ट, एसपीटी एक्ट को कड़ाई से लागू करने, ग्रामीणों के सामुदायिक धरोहर-जंगल-झाडी, नदी-नाला,सरना,मसना,कारस्थान, हड्गाडी, जतरा टांड, चरागाह, अखडा, गैर मजरूआ आम, गैर मजरूआ खास आदि को भूमि बैंक में शामिल किया गया है, जो पांचवी आनुसूचि में प्रावधान अधिकारों को खारिज करता है। यही नहीं सीएनटी एक्ट एवं एसपीटी एक्ट के विरुद्ध है।

सेवा में, महामहिम राज्यपाल महोदया, झारखंड

महोदया,

विषय: आदिवासी-मूलवासी ग्रामीण किसानों के परंपारिक समुदायिक धरोहर जंगल-झाडी, चरागाह, सरना-मसना, अखड़ा, ससनदिरि, हड़गड़ी, जतराटांड, मंड़ा टांड, भूतखेता, डालीकतारी, पहनाई, नदी-नाला, पाईन-झरना सहित गैरमजरूआ आम एवं खास जमीन को भूमि बैंक में शामिल किया गया है, को भूमि बैंक से मुक्त करने, तथा पांचवीं अनुसूची एवं सीएनटी एक्ट एवं एसपीटी एक्ट को कड़ाई से लागू करने के संबंध में।

महाशय,

सिवनयपूर्वक कहना है कि-हमारे पूर्वजों ने सांप-बिच्छू, बाघ-भालू जैसे खतरनाक जानवरों से लड़कर इस झारखंड राज्य की धरती को आबाद किया है। इतिहास गवाह है-कि जब अंग्रेजों के हुकूमत में देश गुलाम था, और आजादी के लिए देश छटपटा रहा था तब आदिवासी समुदाय के वीर नायकों ने, सिद्-कान्हू, चांद-भैरव, सिंदराय-बिंदराय, तिलका मांझी से लेकर वीर बिरसा मुंडा के अगुवाई में देश के मुक्ति संग्राम में अपनी शहादत दी। इन्हीं वीर नायकों के खून से आदिवासी-मूलवासियों के धरोहर जल-जंगल-जमीन की रक्षा के लिए छोटानागपुर काष्तकारी अधिनियक 1908 और संताल परगना काष्तकारी अधिनियम 1949 लिखा गया। जो राज्य के आदिवासी-मूलवासी समुदाय के परंपरागत धरोहर जल-जंगल-जमीन का सुरक्षा कवच है।

हम आप को यह भी बताना चाहते हैं-िक भारतीय संविधान ने हम आदिवासी-मूलवासी ग्रामीण किसान समुदाय को पांचवी अनुसूचि क्षेत्र में गांव के सीमा के भीतर एवं गांव के बाहर जंगल-झाड़, बालू-गिटी, तथा एक -एक इंच जमीन पर, ग्रामीणों को मालिकाना हक दिया है। जमीन -जंगल पर समुदाय का परंपारिक मिलकाना हक से संबंधित जमीन का अभिलेख खितयान भाग दो में गैर मजरूआ आम एवं गैरमजरूआ खास, जंगल-झाडी, नदी-नाला सिहत सभी तरह के समूदायिक जमीन पर समुदाय का हक दर्ज है। इसके आधार पर सरकार इस तरह के जमीन का सिर्फ संरक्षक है। सरकार इस जमीन का देख-रेख करती है, लेकिन मालिक नहीं है, न ही सरकार इस तरह के जमीन को बेच सकती है।

लेकिन दुखद बात है कि-सरकार हम आदिवासी-मूलवासी किसानों के परंपरागत हक-अधिकार को छीन के गैर मजरूआ आम एवं खास जमीन का भूमिं बैंक बना कर, पूजिंपतियों को ऑनलाईन हस्तांतरण कर रही है। यदि ऐसा होता है-तो ग्रामीण आदिवासी-मूलवासी सहित प्रकृति एवं पर्यावरण पर निर्भर समुदाय पूरी तरह समाप्त हो जाएगें। समुदाय की सामाजिक मूल्य, भाषा-संस्कृति, जीविका एवं पहचान अपने आप खत्म हो जाएगा।

हम यह भी बताना चाहते हैं-िक राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था यहां के जंगल-झाड़, पेड़-पैधों, नदी-नाला, झरनों में आधारित है, इसी पर पूरी ग्रामीण अथव्यवस्था टिकी हुई है, जिसका मूल स्त्रोत किसानों के जोत के अलावे गैर मजरूआ आम और गैर मजरूआ खास जमीन ही है। राज्य की जनता को इन्हीं प्रकृतिक स्त्रोतों से शुद्व भोजन, शुद्व पानी और शुद्व हवा मिल रहा है।

आज आदिवासी-मूलवासी समुदाय के समूदायिक धरोहर तमाम तरह के जमीन को भूमिं बैंक में शमिल कर बाहरी लोगों को ऑनलाइन हस्तंत्रित किया जा रहा है जो आदिवासी-मूलवासी, किसान समुदाय को समूल उखाइ फेंकने की तैयारी ही माना जाएगा। इससे आदिवासी -मूलवासी समुदाय खासे चिंतित हैं।

आप को यह भी बताना चाहते है कि 95 प्रतिषत ग्रामीण आबादी न तो कमप्युटर देखी है, न ही इंटरनेट ओपरेट कर सकती है। एसे में जमीन संबंधी सभी तरह के कार्यों को ऑनलाईन संचालित होने से ग्रामीणों की परेशानी बढ़ी है।

वर्तमान सरकार द्वारा लाये गये स्थानीयता नीति में प्रावधान कान्ून के लागू होने से-एक ओर दूसरे राज्यों से आयी आबादी सिहत बड़े बड़े पूजिंपतियों को राज्य में आबाद करने एवं विकसित होने का बड़ा अवसर दे रहा है। दूसरी ओर राज्य के आदिवासी-मूलवासियों को अपने परंपरागत बसाहाट, धरोहर से उजाड़ने के लिए बड़ा हथियार के रूप में भूमि बैक को इस्तेमाल करने जा रहा है।

मंच भूमि बैंक से होने वाले खतरों की ओर आप का ध्यान खींचना चाहता है-

भूमि बैंक एवं के लागू होने से आदिवासी-मूलवासी समुदाय के परंपरागत एवं संवैधानिक अधिकारो पर निम्नलिखित खतरा मंडरा रहा है-

• राज्य का पर्यावरणीय परंपरागत जंगल-झाड, नदी-झील-झरनों के ताना-बाना के साथ जिंदा है, वो पूरी तरह नष्ट हो जाएगा

- भूमि बैंक के लागू होना सीएनटी एक्ट एवं एसपीटी एक्ट पर हमला होगा
- भूमि बैंक के लागू होने से पांचवी अन्सूचित के प्रावधान अधिकार खत्म हो जाएगा
- भूमि बैंक के लागू होने से खूटकटी अधिकार एवं विलक्षिणन रूल, मांझी-परगना व्यवस्था खत्म हो जाएगा। जिसका प्रभाव निम्नलिखित स्तर पर पडेगा-
- 1. पारंपरिक आदिवासी-मूलवासी गांवों का परंपरागत स्वाशासन गांव व्यवस्था तहस-नहस हो जाएगा।
- 2. आदिवासी-मूलवासी किसानों के गांवों की भौगोलिक तथा जियोलोजिकल या भूमिंतत्वीय, भूगर्भीय अवस्था जो यहां के परंारिक कृषि, पर्यावरणीय ताना-बाना, पूरी तरह नष्ट हो जाएगा।
- 3. पारंपरिक आदिवासी इलाके में भारी संख्या में बाहरी आबादी के प्रवेष से आदिवासी परंपरागत सामाजिक मूल्य, सामूहिकता पूरी तरह बिखर जाएगा।
- 4. जंगल-जमीन, जलस्त्रोंतों, जंगली-झाड़, भूमिं पर आधारित परंपरागत अर्थव्यस्था पूरी तरह नष्ट हो जाएगें। स्थानीय आदिवासी-मूलवासी समुदाय पर बाहर से आने वाली जनसंख्या पूरी तरह हावी हो जाएगी, तथा आदिवासी जनसंख्या तेजी से विलोपित हो जाएगा।
- 5. सामाजिक, आर्थिक आधार के नष्ट होने से भारी संख्या में आदिवासी-मूलवासी समुदाय दूसरे राज्यों में पलायन के लिए विवश होगी।
- 6. आदिवासी-मूलवासी समुदाय की सामूहिक एकता को विखंडित किया जा रहा है

 उपरोक्त तमाम खतरों एवं बिंन्दुओं को आप के ध्यान में लाते हुए-हम आदिवासी-मूलवासी अस्तित्व रक्षा
 मंच आप के सामने निम्नलिखित मांग रखते हैं-
- 1. सीएनटी एक्ट एसपीटी एक्ट को कडाई से लागू किया जाए।
- 2. गैर मजरूआ आम, गैर मजरूआ खास, जंगल-झाडी, सरना-मसना, अखड़ा , हडगड़ी, नदी-नाला, पाईन-झरना, चरागाह, परंपारिक-खेत जैसे भूत खेता, पहनाई, डाली कतारी, चरागाह, जतरा टांड, इंद-टांड, मांडा–टांड सहित सभी तरह के सामुदायिक जमीन को भूमिं बैंक में शमिल किया गया है, को उसे भूमिं बैंक से मुक्त किया जाए तथा किसी भी बाहरी पूजिं-पतियों को हस्तंत्रित नहीं किया जाए
- 3. भूमिं सुधार/भूदान कानून के तहत जिन किसानों को गैर मजरूआ खास जमीन का हिस्सा बंदोबस्त कर दिया गया है-उसे रदद नहीं किया जाए
- जमीन अधिग्रहण कानून 2013 को लागू किया जाए

5. किसी तरह का भी जमीन अधिग्रहण के पहले ग्रांव सभा के इजाजत के बिना जमीन अधिग्रहण

किसी भी कीमत में नहीं किया जाए।

6. 5वीं अनुसूचि को कडाई से लागू किया जाए।

7. किसानों का लोन माफ किया जाए

8. ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन रोकने के लिए मनरेगा मजदूरों का मजदूरी दर 159 रू से बढ़ा कर 500

रू किया जाए

9. आदिवासी-मूलवासी विरोधी वर्तमान स्थानीयता नीति को खारिज किया जाए तथा सदियों से जल-

जंगल-जमीन के साथ रचे-बसे आदिवासी-मूलवासियों के सामाजिक मूल्यों, संस्कृतिक मूल्यों, भाषा-संस्कृति

इनके इतिहास को आधार बना कर 1932 के खितयान को आधार बना कर स्थानीय नीति को पूर्नभाषित

करके स्थानीय नीति बनाया जाए।

10. पंचायत म्ख्यालयों, प्रखंड म्ख्यलयों, स्कूलों, अस्पतालों, जिला म्ख्यलयों में स्थानीय बेरोजगार

य्वाओं को सभी तरह के नौकरियों में बहाली की जाए।

11. सरना कोड लागू किया जाए।

निवेदक: आदिवासी-मूलवासी अस्तित्व रक्षा मंच

(साभार: संघर्ष संवाद)

क्रांति या पतन?

मार्क्स की दोसौवीं सालगिरह पर उत्पादन के साधनों के बीच संक्रमण पर कुछ विचार

समीर अमीन

परिचय

कार्ल मार्क्स न केवल उन्नीसवीं सदी के, बल्कि हमारे समकालीन दौर को समझने के लिहाज से भी बहुत बड़े चिंतक हैं। समाज की समझ विकसित करने की और कोई कोशिश इतनी उर्वर साबित नहीं हुई है, बशर्ते "मार्क्सवादी" लोग "मार्क्सोलॉजी" (मार्क्स ने अपने दौर के संबंध में जो लिखा उसे केवल रट के दुहराना) के पार जाकर इतिहास में हुए नए विकास के परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रविधि को लागू करें। खुद मार्क्स ने जीते जी अपने विचारों को निरंतर विकसित और संशोधित करने का काम किया था।

मार्क्स ने कभी भी पूंजीवाद को उत्पादन के नए साधनों तक लाकर सीमित नहीं किया। वे आधुनिक पूंजीवादी समाज के सभी आयामों को संज्ञान में लेते थे और यह समझ रहे थे कि मूल्य का नियम केवल पूंजीवादी संकेंद्रण को ही नियामित नहीं करता बल्कि आधुनिक सभ्यता के सभी पहलुओं को तय करता है। इसी विशिष्ट नज़रिये ने उन्हें नृशास्त्र के व्यापक दायरे के भीतर सामाजिक सम्बन्धों को समझने में पहले वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सूत्रपात करने की सलाहियत दी। उस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अपने विश्लेषण में एक और चीज़ को जगह दी, जिसे आज "इकोलॉजी" या पारिस्थितिकी कहते हैं। मार्क्स के एक सदी बाद इसे दोबारा खोज निकाला गया है, जिसका श्रेय सबसे ज्यादा जॉल बेलेमी फॉस्टर को जाता है जिन्होंने मार्क्स के इस आरंभिक अन्तर्ज्ञान को बड़ी सूक्ष्मता के साथ विकसित किया।

मैंने हालांकि मार्क्स के दूसरे अन्तर्ज्ञान को प्राथमिकता दी है जो वैश्वीकरण के भविष्य से जुड़ा हुआ है। अपने 1957 में लिखे पीएचडी शोध प्रबंध से लेकर अपनी ताज़ा किताब तक मैंने संकेंद्रण के नियम के वैश्विक सूत्रीकरण से पैदा हुए असमान विकास पर काम किया है। इसके सहारे मैंने समाजवाद के नाम पर हुई क्रांतियों की एक व्याख्या विकसित की, जिसकी शुरुआत वैश्विक तंत्र की परिधियों से होती है। मेरे इस प्रयास में पॉल बारन और पॉल स्वीज़ी की बेशी मूल्य की अवधारणा ने काफी योगदान दिया है।

इसके अलावा मैं मार्क्स के एक और अंतर्ज्ञान को साझा करता हूं जिसे उन्होंने 1848 में ही जाहिर कर दिया था और अपने आखिरी लेखन तक वे इसका पुनर्सूत्रीकरण करते रहे- जिसके

अनुसार पूंजीवाद इतिहास के केवल एक छोटे से वक्फ़े की नुमाइंदगी करता है; उसकी ऐतिहासिक भूमिका छोटी सी अविध में ही तय की जानी होती है (एक सदी) यानी वे पिरिस्थितियां जो साम्यवाद तक जाने का आवाहन करती हों, जिसे हम सभ्यता के उच्चतर चरणों के रूप में देखते-समझते हैं।

मार्क्स ने मैनिफेस्टो (1848) में लिखा है कि वर्ग-संघर्ष हमेशा "या तो मोटे तौर पर समाज की क्रांतिकारी पुनर्संरचना करता है या फिर प्रतिरोधी वर्गों के पतन का जिम्मेदार होता है।" लंबे समय से यह वाक्य मेरी विचार-प्रक्रिया के केंद्र में रहा है।

इसी संदर्भ में मैं मार्क्स की दोसौवीं जयंती पर आ रही अपनी आगामी पुस्तक के आखिरी अध्याय "क्रांति या पतन?" पर कुछ विचार रख रहा हूं।

1 मजदूर आंदोलन और समाजवादी आंदोलन ने आधुनिक पूंजीवादी देशों में शुरू हुई क्रांति की श्रृंखला से उपजी दृष्टि के सहारे खुद को अब तक टिकाए रखा है। जर्मन सोशल डेमोक्रेसी के कार्यक्रमों की मार्क्स और एंगेल्स द्वारा रखी गई आलोचना से लेकर रूसी क्रांति के अनुभवों से निकले बोल्शेविकों के निष्कर्षों तक हम पाते हैं कि मजदूर और समाजवादी आंदोलनों ने कभी भी वैश्विक स्तर पर समाजवाद तक संक्रमण के लिए किसी और नज़रिये से परिकल्पना नहीं की है।

पिछले पचहत्तर वर्षों से ज्यादा वक्त में हालांकि दुनिया कुछ दूसरे रास्तों से बदली है। आधुनिक पश्चिम के क्षितिज से क्रांति का परिप्रेक्ष्य ही गायब हो गया है जबिक समाजवादी क्रांतियां विश्व-व्यवस्था की परिधि तक सीमित हो गई हैं। यह विकासक्रम इतना अटपटा रहा है कि कुछ लोग इसे वैश्विक स्तर पर पूंजीवाद के विस्तार का ही एक चरण मानकर देखते हैं। असमान विकास के संदर्भ में इस विश्व-व्यवस्था का एक विश्लेषण इसका भिन्न जवाब तलाशता है। समकालीन साम्राज्यवादी व्यवस्था से शुरू कर के यह विश्लेषण हमें अतीत के ऐतिहासिक चरणों में भी असमान विकास की प्रकृति और आशय का संज्ञान लेने को बाध्य करता है। उत्पादन के एक साधन से दूसरे साधन तक संक्रमण का तुलनात्मक इतिहास सामान्य और सैद्धांतिक स्तर पर संक्रमण के साधन के संबंध में एक सवाल पैदा करता है। लिहाजा, जो इतिहासकार ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रणेता नहीं है, उन्होंने मौजूदा परिस्थिति और रोमन साम्राज्य के अंत की स्थितियों के बीच समानताओं को संज्ञान में लेते हुए दोनों के एक पटरी पर बैठाने का काम किया। दूसरी ओर मार्क्सवाद की कठमुल्लावादी व्याख्या ने ऐतिहासिक भौतिकवाद का इस्तेमाल कर के इस पर आगे के विचार को ही दुरूह बना डाला। यही वजह थी कि रूसी इतिहासकारों ने "रोम के पतन" की बात कहते हुए पूंजीवादी संबंधों के संदर्भ में

उत्पादन के नए संबंधों के इकलौते प्रतिस्थापन के बतौर "समाजवादी क्रांति" की अवधारणा रखी। उत्पादन के संबंधों में प्राचीन व पूंजीवादी संकट के स्वरूप व अंतर्वस्तु का निम्न तुलनात्मक अध्ययन इस मसले को संबोधित करता है। क्या इन दो संकटों के बीच के फ़र्क के चलते एक को "पतन" जबिक दूसरे को "क्रांति" की तरह बरतना तर्कसम्मत है?

मेरा केंद्रीय तर्क यह है कि इन दो संकटों के बीच एक समानता निश्चित रूप से मौजूद है। दोनों ही मामलों में व्यवस्था संकटग्रस्त है क्योंकि जिस बेशी मूल्य के केंद्रीकरण को वह जन्म दे रही है वह अत्यधिक है, यानी अंतर्निहित उत्पादन-संबंधों की तुलना में वह बहुत आगे की है। इसीलिए विश्व-व्यवस्था की परिधि पर उत्पादक ताकतों का उभार व्यवस्था के विघटन को अनिवार्य बना देता है तथा बेशी के संग्रहण और उपयोग के एक विकेंद्रीकृत तंत्र से उसे प्रतिस्थापित कर देता है।

2

ऐतिहासिक भौतिकवाद के भीतर सर्वाधिक स्वीकार्य प्रस्थापना उत्पादन के तीन साधनों के उत्तराधिकार की है: दास, सामंती और पूंजीवादी साधन। इस खांचे में देखें तो रोम का पतन दास प्रथा से कृषक-दासता में संक्रमण की महज एक अभिव्यक्ति जान पड़ेगा। यह सवाल तब भी रह जाएगा कि जिस तरह हम बुर्जुआ या समाजवादी क्रांतियों की बात करते हैं, हमने क्यों नहीं "सामंती क्रांति" की बात की।

में इस सूत्रीकरण को पश्चिम के इतिहास के विशिष्ट लक्षणों की पश्चिम केंद्रित अतिसामान्य व्याख्या के तौर पर देखता हूं, जो दूसरे लोगों के इतिहास को उनकी विशिष्टताओं सहित खारिज करता है। सार्वभौमिक अनुभव के आधार पर ऐतिहासिक भौतिकवाद के नियमों को गढ़ने के क्रम में मैंने एक प्राक्-पूंजीवादी साधन का वैकल्पिक सूत्रीकरण प्रस्तावित किया है- ट्रिब्यूटरी मोड यानी अधीनस्थ (या सहायक) अवस्था, जिस ओर सारे वर्गीय समाज स्वतः प्रवृत्त होते हैं। पश्चिम का इतिहास- रोमन प्राचीनता की निर्मित, उसका विखंडन, सामंती योरप की स्थापना और अंत में महाजनी सभ्यता के दौरान निरंकुशतावादी राज्यों का ठोसीकरण- एक निश्चित स्वरूप में दरअसल उसी बुनियादी प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करता है जिसे दूसरी जगहों पर अधीनस्थ राज्यों (ट्रिब्यूटरी स्टेट्स) की अपेक्षाकृत निरंतर निर्मित के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। चीन इसका एक सशक्त उदाहरण है। अधीनस्थ और पूंजीवादी स्थितियां जितना सार्वभौमिक हैं, उतना दास प्रथा नहीं है। दास प्रथा एक विशिष्ट अवस्था है और पण्य-संबंधों के विस्तार के संदर्भ में ही सामने आती है। इसके अलावा सामंती अवस्था और पुरानी है, एक तरह से अधूरी अधीनस्थता।

इसके हिसाब से रोम की स्थापना और फिर विखंडन दरअसल अधीनस्थ अवस्था की निर्मिति का एक अपिरपक्व/असमय प्रयास था। वहां उत्पादक शक्तियों के विकास का जो स्तर था, उसे रोमन साम्राज्य के स्तर पर अधीनस्थता के केंद्रीकरण (ट्रिब्यूटरी सेंट्रलाइज़ेशन) की जरूरत नहीं थी। इसका असमय प्रयास किया गया, जिसके बाद सामंती बिखराव के माध्यम से जबरन संक्रमण लाया गया। इसी के आधार पर एक बार फिर पश्चिम की निरंकुश राजसत्ताओं के ढांचे में केंद्रीकरण को बहाल किया गया। इसके बाद जाकर पश्चिम में उत्पादन के साधन संपूर्ण अधीनस्थ मॉडल की ओर मुइ सके। इसी चरण के साथ पश्चिम की उत्पादक ताकतों के विकास का पिछला स्तर साम्राज्यवादी चीन के बराबर हो गया। इसमें कोई शक नहीं कि यह कोई संयोग नहीं था।

रोम के असमय पतन और सामंती बिखराव में अभिव्यक्त पश्चिम के पिछड़ेपन ने उसे ऐतिहासिक लाभ की स्थित में ला खड़ा किया। प्राचीन अधीनस्थ अवस्था और बर्बर सामुदायिक अवस्था के विशिष्ट तत्वों का सिम्मिश्रण पश्चिम के सामंतवाद का लक्षण बना, जिसने उसे लचीला बनाया। इसी से यह बात समझ में आती है कि योर इतनी तेज़ गित से अधीनस्थ अवस्था को लांघते हुए कैसे पश्चिम की उत्पादक ताकतों के विकास के स्तर को भी पार कर गया और पूंजीवाद में प्रवेश कर गया। इस लचीलेपन और तीव्रता के मुकाबले ओरिएन्टल यानी पूर्वी गोलार्द्ध के देशों में संपूर्ण अधीनस्थता का विकास धीरे-धीरे हुआ।

अकेले रोमन-पश्चिम देश अधीनस्थता के असमय गर्भपात का उदाहरण नहीं हैं। इस किस्म के तीन और मामले हम पहचान सकते हैं जिनकी अपनी विशिष्ट स्थितियां रहीं: बाइज़ैन्टाइन-अरब-ओटोमन केस, भारत का केस और मंगोल। इन तीनों उदाहरणों में केंद्रीकरण के अधीनस्थ तंत्र को थोपने के प्रयास उत्पादक ताकतों के विकास की जरूरतों से काफी आगे के थे। तीनों मामलों में केंद्रीकरण का स्वरूप संभवत: राज्य, अर्ध-सामंती और पण्य-साधनों का विशिष्ट मेल थ। मसलन, इस्लामिक राज्य में पण्य के केंद्रीकरण ने निर्णायक भूमिका निभायी। भारत में हिंदू विचारधारा के तत्वों को इसकी निरंतर नाकामी का श्रेय जाता है, जिसे मैंने चीन के कनफ्यूशियसवाद के साथ रखकर देखा है। जहां तक चंगेज़ खान के साम्राज्य में केंद्रीकरण का सवाल है, तो हम जानते हैं कि उसकी उम्र बहुत कम रही।

3

समकालीन साम्राज्यवादी व्यवस्था भी वैश्विक स्तर पर बेशी मूल्य के केंद्रीकरण की ही एक व्यवस्था है। यह केंद्रीकरण पूंजीवादी साधनों के मूलभूत नियमों के आधार पर संचालित होता है जहां परिधि पर मौजूद प्राक्-पूंजीवादी स्थितियों पर उसका वर्चस्व बना रहता है। मैंने वैश्विक स्तर पर पूंजी के संकेंद्रण के नियम का सूत्रीकरण उसी स्तर पर परिचालित मूल्य के नियम की अभिव्यक्ति के रूप में किया है। मूल्य-कंद्रीकरण की साम्राज्यवादी व्यवस्था का लक्षण है संकंद्रण में तेज़ी और उत्पादक ताकतों का व्यवस्था के केंद्र में विकास। इस क्रम में परिधि पर मौजूद उत्पादक ताकतें हतोत्साहित की जाती हैं और नतीजतन विकृत हो जाती हैं। लिहाजा, विकास और अविकास एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में उभरकर सामने आते हैं। इस तरह हम पाते हैं कि परिधि पर उत्पादक ताकतों का और विकास करने के लिए बेशी मूल्य के केंद्रीकरण की साम्राज्यवादी व्यवस्था का नाश करने की ज़रूरत पड़ेगी। इस विकेंद्रीकरण के एक अनिवार्य चरण के तौर पर राष्ट्रों के भीतर समाजवादी संक्रमण को लाना ज़रूरी होता है। संक्रमण की यह अवस्था विकास के उच्चतर स्तर पर उस पुनर्एकीकरण से पहले घटनी चाहिए, जिसे जाहिर तौर से एक वर्गविहीन समाज ही बनाएगा। समाजवादी संक्रमण की सैद्धांतिकी और रणनीति के लिहाज से इस केंद्रीय प्रस्थापना के कई निहितार्थ हैं।

परिधि पर होने वाला समाजवादी संक्रमण राष्ट्रीय मुक्ति से भिन्न नहीं होता। यह स्पष्ट हो चुका है कि राष्ट्रीय मुक्ति स्थानीय बुर्जुआ नेतृत्व के तहत असंभव है और इस तरह वह चरण दर चरण मजदूरों-किसानों की अबाध क्रांतियों की प्रक्रिया में एक लोकतांत्रिक पड़ाव की शक्ल ले लेती है। समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति के उद्देश्यों का एकाकार होना कुछ नई समस्याओं को जन्म देता है जिनका मूल्यांकन हमें करना होगा। एक तो यह होता है कि सारा ज़ोर एक पहलू से दूसरे पहलू में बदल जाता है जिसके चलते समाज की वास्तविक गित प्रगित और प्रतिगामिता, अलगाव और उभयवृत्ति के बीच झूलती रहती है। इसका स्वरूप अनिवार्यत: राष्ट्रवादी होता है। यहां हम एक बार फिर रोमन साम्राज्य के प्रति बर्बरों के रवैये से तुलना कर सकते हैं: वे साम्राज्य के प्रति उभयवृत्त थे और जिस रोमन मॉडल के खिलाफ वे बग़ावत कर रहे थे, किसी गुलाम की भांति उसी का औपचारिक अनुकरण भी कर रहे थे।

ठीक इसी वक्त मुख्यधारा के समाज की परजीवी प्रवृत्ति भी तीव्र हो उठती है। कुछ समाजों में तो साम्राज्यवाद के प्रति श्रद्धा के चलते आम जनता भ्रष्ट हो गई और उसकी बग़ावत कुंद होकर रह गई। साम्राज्यवादी केंद्रीयता वाले समाजों में ज्यादातर आबादी अनुत्पादक रोजगार और अपने सामाजिक रसूख के चलते लाभान्वित होती है। दोनों की ही वजह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर श्रम का असमान विभाजन है। इसीलिए साम्राज्यवादी व्यवस्था से अलगाव की परिकल्पना और ऐसे साम्राज्यवाद-विरोधी गठजोड़ का निर्माण मुश्किल है जो प्रभुत्तवादी गठबंधनों को पलट पाने में सक्षम हो और समाजवादी संक्रमण का सूत्रपात कर सके।

परिधि पर उत्पादन के नए संबंधों को पैदा करना केंद्र के मुकाबले आसान नज़र आता है। रोमन साम्राज्य में हम देखते हैं कि गॉल और जर्मनी में सामंती संबंध काफी तेजी से विकसित हुए जबिक इटली और पूरव में इसकी गित धीमी रही। सर्फडम यानी कृषक-दास व्यवस्था की खोज रोम ने की और दास प्रथा की जगह उसे प्रस्थापित किया, लेकिन अन्यत्र सामंती प्रभुत्व विकसित होता रहा और यहां तक कि इटली में सामंती संबंध पूरी तरह विकसित नहीं हो सके। आज केंद्र में पूंजीवादी संबंधों के खिलाफ बग़ावत की छुपी हुई भावना बहुत तगड़ी है लेकिन उसके दांत और नाखून नहीं हैं। लोग अपनी "जिंदगी बदलने की ख्वाहिश" तो रखते हैं लेकिन अपने यहां सरकार तक नहीं बदल पाते। इसीलिए उत्पादन और राज्य के संगठन के मुकाबले सामाजिक जीवन में प्रगति ज्यादा दृश्य होती है। जीवनशैली में मूक बग़ावत, परिवारों का टूटना, बुर्जुआ मूल्यों का विघटन, इस प्रक्रिया के विरोधाभासी पहलुओं को दर्शाता है। परिधि पर मान्यताएं और विचार अकसर उतने आधुनिक नहीं होते, लेकिन वहां भी समाजवादी राज्यों की स्थापना तो हुई ही है।

कठमुल्ला मार्क्सवादी परंपरा ने सामाजिक बदलाव की द्वंद्वात्मकता को यांत्रिक बना डाला है। क्रांति- जिसका वस्तुगत उद्देश्य उत्पादन के पुराने संबंधों का उन्मूलन कर के नए संबंधों की स्थापना करना है, जो कि उत्पादक ताकतों के आगे के विकास की पूर्वशर्त है- एक प्राकृतिक नियम है: जिसके सामाजिक दायरे पर उसके अनुप्रयोग से मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन में बदल जाते हैं। वर्ग संघर्ष इस वस्तुगत अनिवार्यता को सामने लाता है: केवल क्रांति का हरावल दस्ता यानी पार्टी ही सबसे ऊपर होगी, इतिहास बनाएगी, इतिहास पर जिसका वर्चस्व होगा और जो अविच्छिन्न (डी-एलियनेटेड) होगी। क्रांति को परिभाषित करने वाला राजनीतिक क्षण वह होगा जब हरावल दस्ता राज्य पर कब्ज़ा कर लेगा। खुद लेनिनवाद भी सेकंड इंटरनेशनल के मार्क्सवाद के सामान्यीकरण से मुक्त नहीं है।

यह सिद्धांत, जो हरावल दस्ते को वर्ग से अलग करता है, अतीत की क्रांतियों पर लागू नहीं होता। बुर्जुआ क्रांति का ऐसा स्वरूप नहीं था। उसमें तो बुर्जुआजी ने सामंतों के खिलाफ़ खड़े होकर किसानों के संघर्षों को अपने पाले में खींच लिया। उन्होंने यह काम जिस विचारधारा के सहारे किया वह खुद अलगावकारी थी। इस अर्थ में देखें तो बुर्जुआ क्रांति नाम की कोई चीज़ नहीं है। यह नाम खुद बुर्जुआ विचारधारा की देन है। केवल वर्ग संघर्ष हुआ जिसकी अगुवाई बुर्जुआ ने की या ज्यादा से ज्यादा किसानों की क्रांति हुई जिसे बुर्जुआ ने हड़प लिया। "सामंती क्रांति" के बारे में तो इस बारे में कहने को और कम है, जहां संक्रमण अवचेतन स्तर पर हुआ था।

समाजवादी क्रांति इनसे अलग किस्म की होगी, यह मानते हुए कि चेतना अलगाव में नहीं होगी बल्कि अविच्छिन्न होगी क्योंकि पहली बार उसका लक्ष्य हर किस्म के शोषण का उन्मूलन करना होगा और वह शोषण के पुराने रूपों को वापस लेकर नहीं आएगी। ऐसा हालांकि तभी म्मिकन होगा जब उसके साथ खड़ी विचारधारा उत्पादक ताकतों के विकास की ज़रूरतों की

चेतना से अलहदा हो। अब यह कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इस तरह के विकास की ज़रूरत का जवाब राज्य केंद्रित उत्पादन अवस्था तो नहीं ही हो सकती।

5 जनता अपना इतिहास खुद रचती है। पशु या निर्जीव वस्तुएं अपने विकास की नियंता नहीं हैं, वे उसके गुलाम हैं। संकल्प और मानवीय हस्तक्षेप की सम्यक अभिव्यक्ति के रूप में एक समाज के लिए प्रैक्सिस की अवधारणा बिलकुल उपयुक्त है। अधिरचना और आधार के बीच का द्वंद्वात्मक संबंध भी समाज के लिए उपयुक्त है और उसका कोई जोड़ नहीं। यह संबंध एकतरफा नहीं होता। अधिरचना आधार की ज़रूरतों का अक्स नहीं है। यदि ऐसा होता तो समाज हमेशा अलगाव में ही रहता और ऐसे में मुझे उसकी मुक्ति का तब कोई परिदृश्य नज़र नहीं आता।

इसीलिए, एक से दूसरी अवस्था में जाने के लिए मैं दो गुणात्मक रूप से भिन्न संक्रमणों के बीच में अंतर करने की बात कहता हूं। जब संक्रमण अनायास हो जाए या फिर अलगाव में पड़ी चेतना द्वारा किया गया हो, यानी जब विचारधारा का विरोध करने वाला वर्ग बदलाव की प्रक्रिया पर चेतना का नियंत्रण न कायम होने दे, तब ऐसा लगता है कि वह कुदरती रूप से बदलाव के पक्ष में है और विचारधारा भी स्वत: साथ चली आ रही है। इस किस्म के संक्रमण मॉडल को हम "पतन का मॉडल" नाम दे सकते हैं। इसके उलट इच्छित बदलाव के संपूर्ण और वास्तविक आयाम को केवल और केवल विचारधारा जहां अभिव्यक्त कर रही हो, तब हम क्रांति की बात कर सकते हैं।

हमारे दौर की समाजवादी क्रांति पतनशील है या क्रांतिकारी? इस सवाल का जवाब पक्के तौर पर हम अभी नहीं दे सकते। कुछ मायने में आधुनिक विश्व का रूपांतरण बेशक अपने भीतर क्रांतिकारी तत्व लिए हुए हैं। पेरिस कम्यून और रूसी व चीनी क्रांति (और खासकर सांस्कृतिक क्रांति) अविच्छिन्न सामाजिक चेतना के तीव्र क्षण रहे हैं। लेकिन क्या हम दूसरे किस्म के संक्रमण में मुब्तिला नहीं हैं? आज साम्राज्यवादी देशों से संलग्नता खत्म करना जितना मुश्किल हो गया है और समाजवादी राह पर चल रहे हाशिये के राष्ट्रों पर इसका जो नकारात्मक असर पड़ रहा है (जिसका नतीजा पूंजीवाद की संभावित बहाली, राज्यवादी मॉडल की ओर विकास, प्रतिगामिता, राष्ट्रवादी अलगाव, इत्यादि), वह पुराने बोल्शेविक मॉडल पर सवाल खड़े करता है। कुछ लोगों ने इसके आगे घुटने टेक दिए हैं। वे मानने लगे हैं कि हमारा दौर समाजवादी संक्रमण का नहीं है बल्कि पूंजीवाद के वैश्विक विस्तार का दौर है जो "योरप के इस छोटे से कोने" से शुरू होकर अब दक्षिण और पूरब में फैल रहा है। इस प्रक्रिया के बाद सामाज्यवाद- जो कि पूंजीवाद की चरम अवस्था है- लगता नहीं कि अंतिम चरण होगा बल्कि सार्वभौमिक पूंजीवाद की ओर यह संक्रमण का चरण होगा। अगर कोई अब भी यह मानता है कि साम्राज्यवाद का

लेनिन का सिद्धांत सही है तथा राष्ट्रीय मुक्ति बुर्जुआ क्रांति का नहीं बल्कि समाजवादी क्रांति का हिस्सा है, तो क्या नए पूंजीवादी केंद्रों के उभार के बतौर अपवाद संभव नहीं होंगे? यह सिद्धांत पूरब के देशों में राज्यवादी मोड की बहाली या उभार पर ज़ोर देता है। यह छद्म-समाजवादी क्रांतियों की पहचान पूंजीवादी विस्तार की वस्तुगत प्रक्रिया के रूप में करता है। मार्क्सवाद यहां अलगाव में डालने वाली विचारधारा का रूप ले लेता है जो इस घटनाक्रम पर परदा डालने का काम कर रहा हो।

जो लोग भी ऐसी राय रखते हैं वे मानते हैं कि हमें तब तक इंतज़ार करना चाहिए जब तक केंद्र में उत्पादक ताकतों के विकास का स्तर समूची दुनिया तक फैलने में सक्षम न हो जाए, उसके बाद वर्गों के उन्मूलन का सवाल एजेंडे पर रखा जा सकता है। इस तरह योरप के लोगों को एक बहुराष्ट्रीय योरप बनने देना चाहिए ताकि राज्य की अधिरचना को उत्पादक ताकतों के अनुकूल बनाया जा सके। वे मानते हैं कि विश्व स्तर पर उत्पादक ताकतों के हिसाब से एक भूमंडलीय राज्य की स्थापना का इंतज़ार करना होगा, जब तक कि उसका आधार रखने की वस्तुगत परिस्थितियां तैयार न हो जाएं।

मेरे समेत कुछ और लोग चीज़ों को अलग ढंग से देखते हैं। एक चरणबद्ध निर्बाध क्रांति परिधि के एजेंडे पर आज भी मौजूद है। समाजवादी संक्रमण की राह में बहालियां स्थायी नहीं होती हैं, उन्हें उलटा जा सकता है। इसी तरह केंद्र में कुछ कमज़ोर कड़ियां भी होती हैं और साम्राज्यवादी मोर्च में दरार भी कोई काल्पनिक बात नहीं है। यह मुमिकन है।

(समीर अमीन सेनेगेल के डकार में थर्ड वर्ल्ड फोरम के निदेशक हैं और कई किताबों के लेखक हैं, जिनमें हालिया किताबें हैं मॉडर्न इम्पीरियलिज़्म, मोनॉपली फिनांस कैपिटल और मार्क्सज़ लॉ ऑफ वैल्यू। यह लेख समयांतर पत्रिका से साभार है)